पृथ्वी से सप्तर्षि मण्डल



सम्पूर्णानन्द

प्रकाशक
प्रसाद परिषद,
काशी

प्रथम सस्करण १५ अगस्त १९५३
मूल्य १॥)

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस

भूमिका

कुछ लोगो ने मेरी पुस्तके पढी है। जिनको इस प्रकार समय नष्ट करने का अवसर नही मिला उनमे से भी कुछ ने सुन रखा है कि मैं कभी-कभी लिखता हूँ। प्रसिद्धि यह है कि मेरी लेखनी राजनीति और दर्शन जैसे गम्भीर विषयो पर ही उठती है। अब मैं कहानी लिखने बैठा हूँ, इससे बहुतो को आश्चर्य होगा।

इस कहानी का छोटा-सा इतिहास है। उस इतिहास के ही कारण यह भूमिका लिखी जा रही है, अन्यथा ऐसी पुस्तको मे भूमिका के लिए स्थान नही होता। मै कई मित्रो से यह कहता रहा हूँ कि हिन्दी मे 'सायस फिक्शन' (वैज्ञानिक कहानी) लिखने का अभी चलन नही है और यह बहुत बडी कमी है। 'सायस फिक्शन' भी दो प्रकार का होता है। साधारण कथानक रखकर उसमे कही बिजली का जिक्र कर दिया जाय या घटनास्थल पृथिवी से उठाकर किसी अन्य पिण्ड पर डाल दिया जाय तो यह वास्तविक वैज्ञानिक कहानी नहीं हुई। इस विषय के जो अच्छे लेखक है उनका उद्देश्य विज्ञान का प्रचार होता है। कहानी तो बहाना मात्र होती है। इसलिए कथानक बहुत थोडा होता है। लेखक कल्पना से काम तो लेता है परन्तु वैध सीमाओ के भीतर। उन्ही बातो का चर्चा करता है जो या तो आज विज्ञान के प्रयोग मे आ चुकी है या विज्ञान की प्रगति को देखते हुए सौ-दो-सौ वर्षो मे व्यवहार मे आ जायेंगी। जिसको विज्ञान सम्भव मानने लगा है उसका ही उल्लेख किया जाता है। ऐसे वाङमय की रचना के मार्ग मे कई गहन कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। विज्ञान की गूढ बातों को किस्सा-कहानी के ढग पर कहना सुकर नही होता और यदि

उनकी विशद व्याख्या की जाय तो वह विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का रूप ले लेता है। इससे उद्देश्य की ही हानि होती है। हिन्दी मे लिखनेवाले को एक और विपत्ति का सामना करना होगा। पाश्चात्य देशो मे साधारण जनता का सामान्य ज्ञान बढा हुआ है, हमारे यहाँ अच्छे पढे-लिखे व्यक्ति भी विज्ञान के प्रारभिक ज्ञान तक से बहुधा वचित रहते है। यहाँ लेखक को अपने पाठक को ऐसी बातें समझानी पडेंगी जिनको पश्चिम मे प्राय. सब जानते है।

सम्भवत इसी कारण अब तक ऐसी पुस्तके नही लिखी गई। मैंने जिन लोगो से चर्चा किया उन्होने मेरे विचार का तो अभिनन्दन किया पर अग्रसर कोई न हुआ। तब मैंने स्वयं इस काम को करने का निश्चय किया। अपनी कमियो को जानता हूँ, विज्ञान का पडित नही, कहानी लिखने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ। पुस्तक भ्रामक भी हो सकती है और रोचक तो स्यात् नही ही होगी। इसकी असफलता के साथ साहित्यिक जगत् मे मेरी जो कुछ थोडी-बहुत साख है वह भी मिट जायगी। यह सब समझता हूँ पर आशा यह है कि मेरी त्रुटियो से लाभ उठाकर दूसरे लोग जो इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है, इस दिशा मे प्रवृत्त होगे। इससे हिन्दी वाङ्मय की एक त्रुटि दूर होगी और जनता का सुबोध और रोचक भाषा मे विज्ञान के गम्भीर तत्वो से परिचय होगा। यदि इतना हुआ तो स्वयं असफल होकर भी यह छोटी-सी पुस्तक कृतकृत्य हो जायगी।

मैंने दूरस्थ पिण्डों मे प्राचीन भारतीय सस्कृति की झलक दिखलायी है। मेरा ऐसा करना उतना ही वैध है जितना अग्रेजी या अमेरिकन लेखको का ऐसे पिण्डो को अग्रेजी बोलनेवालो से बसाना। इससे मुख्य वैज्ञानिक तथ्यो को कोई आघात नही पहुँचता और रोचकता कुछ बढ़ जाती है। वस्तुत. सौरमंडल के बाहर किस-किस तारे के साथ ग्रह है यह कोई नहीं

जानता। बडे-से-बडे दूरबीन से भी ऐमे छोटे पिड देख नही पडते परन्तु हाँ, ऐसा अनुमान है कि जैसे हमारे सूर्य्य के साथ ग्रहोपग्रह परिवार है वैसे सब नही तो कुछ दूसरे तारो के साथ तो होगा ही।

मैंने इस भूमिका के आरम्भ मे कल्पना से काम लेने की वैध सीमा की ओर सकेत किया है। कहानी का स्वरूप होने से कुछ ऐसी बाते कहनी पडती है जो इस सीमा के बाहर चली जाती है, पर यह अनिवार्य्य है। इस पुस्तक मे जिस यात्रा का वर्णन किया गया है उसकी समाप्ति सात वर्षो मे हुई है। करोडो कोस की यात्रा थी। विज्ञान के अनुसार प्रकाश का वेग वेग की चरम सीमा है। अर्थात् कोई वस्तु ९३,००० कोस प्रति सेकेंड से अधिक तेज नही चल सकती। जहाज का वेग किसी भी दशा मे इससे अधिक नही हो सकता। जिस दूरी को पार करने मे प्रकाश को लाखो वर्ष लगते है, वह सात वर्ष मे कैसे हुई? यदि इस सम्बन्ध में शुद्ध गणित का लिहाज किया जाय तो यात्रा कभी समाप्त ही न हो। शनि के उपग्रह टाइटन पर होटल और पुलिस की अन्तर्ग्रह चौकी रक्खी गई है। यदि कभी आकाशयान चले और दूसरे ग्रहों पर आकाशयान चलानेवाले व्यक्तियो का अस्तित्व प्रमाणित हुआ तो कभी-न-कभी, कही-न-कही, इस प्रकार का प्रबध करना ही होगा। हा, टाइटन की बात कल्पनामात्र है, ज्योतिषियो का तो यह ख्याल है कि शनि इस योग्य नही है कि वहाँ कोई बस सके। और टाइटन के भी बसने योग्य होने का कोई प्रमाण नही है। लेखक एक और विषय मे स्वतन्त्रता से काम लेता है। यदि उसको ऐसा लगता है कि किसी विशेष दिशा मे विज्ञान की प्रगति आगे चलकर मानव समाज के लिए हानिकर हो सकती है तो फिर लोगो को सावधान करना उसका धर्म हो जाता है। इस धर्म पालन करने मे उसे अतिशयोक्ति से काम लेना ही पड़ता है। वह ऐसा चित्र खीचता है जो असम्भव न होते हुए

भी निकट भविष्य के लिए सम्भव नही है। इस पुस्तक मे यंत्रो मे चेतना का सचार इसका उदाहरण है।

वेष्टन पर जो आकाशचित्र बना हुआ है, वह कल्पित यात्रा के मार्ग को बतलाता है। हम लोग अपने निर्मल आकाश की ओर सिर उठाकर देखना भूल गये है। यात्रा हुई हो या न हुई हो परन्तु यदि इसी बहाने कुछ लोगो मे आकाश-निरीक्षण का प्रेम जाग उठे तो मै अपने को धन्य मानूँगा। मुझे तारो से प्रेम है और यह कह सकता हूँ कि उनसे अपनापन स्थापित कर लेने मे बडा आनन्द मिलता है।

लखनऊ
आषाढ शुक्ल १, २०१० }

सम्पूर्णानन्द

चार मित्र

आज से पचहत्तर वर्ष बाद--स० २०८५ विक्रमी, सन् २०२८, आश्विन का महीना, शुक्ल पक्ष। स्थान: काशी-सारनाथवाली सडक पर एक बाग।

रात मे १०॥ बजे होगे। एक अच्छे सजे कमरे मे चार मित्र बैठे हैं। बीच मे मेज पर कुछ पुस्तके और कई नक्शे रखे हैं। चारो मित्र समवयस्क थे, चारो की मुद्रा मे गम्भीरता थी। उनका परिचय शुरू मे ही दे देना अच्छा होगा। अद्वैतकुमार काशी विश्वविद्यालय से ज्योतिष और गणित शास्त्र के, और रमेशचन्द्र प्राणिशास्त्र के डाक्टर थे। विमलादत्त ने रुडकी से इजिनियर की उपाधि ली थी। उनको मशीनो के साथ-साथ विद्युत्-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। यह तीन तो विज्ञान की किसी न किसी शाखा के अच्छे ज्ञाता थे। इनके चौथे मित्र का अध्ययन-क्षेत्र इनसे भिन्न था। वह काशी विद्यापीठ के शास्त्री थे और उनका क्षेत्र दर्शन और समाजशास्त्र था। संस्कृत से अच्छी रुचि थी। इसी लिए मित्रमडली मे पडितजी कहलाते थे। नाम गिरीशप्रसाद था।

अद्वैत--हमारा जहाज तो तैयार हो गया, सामान भी प्राय: सब रख लिया गया पर ज्यो-ज्यो उडने के दिन निकट आ रहे है, जी मे न जाने कैसा हो रहा है।

विमला--क्यों, क्या तुमको इसकी बनावट मे कुछ सन्देह होता है? अभिमान है तो बुरी चीज परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि कोई भी

जहाज आकाश मे उड सकता है तो हमारे 'मरुत्वान्' मे भी वह क्षमता है। मैंने अमेरिका के बने आकाशयान देखे है। उनका भीतर-बाहर से अध्ययन किया है। मेरा विश्वास है—क्या कहूँ अपनी प्रशसा होती है—कि इसमे उनके सब गुण है और अनुभव से उनमे जो त्रुटियाँ देखी गई है वह भी दूर कर दी गई है।

रमेश—यह बात नही है विमला। इस जहाज पर हम सब को गर्व है, परन्तु पृथ्वी, पृथ्वी ही नही सौरमडल, को छोडकर शून्य मे भ्रमण करना साधारण बात नही है। अब तक जितने आकाशयान बने है वह सौरमडल के आगे नही गए। न जाने हम किस केतु या मृत सूर्य्य से टकरा जायँ, किस बृहत् पिड के आकर्षण-क्षेत्र मे पकड़ जायँ। यदि हमारी भोज्य सामग्री समाप्त हो गई और हमारा ईधन का भडार खतम हो गया और इसी बीच हम किसी ऐसे स्थान पर न पहुँच सके जहाँ मनुष्य रह सकता हो तो क्या होगा?

पंडित—होगा क्या? जो लोग किसी पथ पर पहिले चलते है उनको सफलता की आशा रखते हुए भी असफलता के लिए तैयार रहना चाहिए। प्राण ही तो जायँगे, पर यह तो एक दिन यो भी होना है: क्षणं प्रज्वलित श्रेयो, न च धूमायित चिरम्। यह तो सोचो हम उस मार्ग पर चलेगे जिसको आज से लाखो वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजो ने प्रशस्त किया था।

रमेश—इसका क्या तात्पर्य?

पंडित—हम लोगो ने यही तो निश्चय किया है कि सप्तर्षिमडल के तारो की ओर चलेगे। हमारे शास्त्रो के अनुसार उन सब लोको में ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षियो की सन्तान बसी हुई है। तो फिर कभी तो वह भारत से वहाँ गये होगे?

विमला—सप्तर्षिमडल यहाँ से कम-से-कम ८ करोड ज्योतिर्वर्ष* अर्थात् २४६०८ × १०[१६] कोस दूर है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि प्राचीन काल मे लोग इतनी दूर चलनेवाले आकाशयान बना सकते थे? पर हाँ, आप तो यह मानते होगे कि आजकल की सारी विद्या आपकी पुरानी पोथियो मे भरी पडी है।

पंडित—मै यह सब कुछ नही जानता ओर फिर इस शास्त्रार्थ से लाभ ही क्या? यदि हम वहाँ पहुँच गये तो सच झूठ की परख आप ही हो जायगी।

अद्वैत—हमने निकलने की तिथि तो अभी चुनी है। विजयादशमी को लोग सीमोल्लघन किया करते है। हम बहुत बड़ी सीमा को पार करने का अनुष्ठान करेगे।

पडित—भारत का राष्ट्रध्वज और एक बन्द शीशी मे गगाजल न भूल जाना। यदि आकाश मे ही मृत्यु होनी हो तो... ...

रमेश—(बात काटकर) अच्छा, खैर। तुम्हारे दाह-सस्कार के लिए हम थोडी-सी चन्दन की लकडी भी रख लेगे। परन्तु अब बात करने का समय नही है। अगले तीन दिन बड़े महत्व के है। जहाज का सारा बचा-खुचा काम पूरा करना है।

इस बातचीत की व्याख्या की अपेक्षा नही है। इन चारो ने अपने पैसे से इस आकाशयान को तैयार किया था। सारनाथ मे पडित का बाग था। वही सारा काम सम्पन्न हुआ था। भारत सरकार ने इन लोगो को यह यात्रा करने की अनुमति दे दी थी।

आकाश की सैर करने का शौक मनुष्य को सदा से रहा है। इस सैर

---

*प्रकाश एक सेकड मे ९३,००० कोस जाता है। इस हिसाब से वह एक वर्ष मे जितनी दूर जाता है, उसे ज्योतिर्वर्ष कहते है।

से दूर के पिण्डो पर पहुँचने से कोई प्रत्यक्ष लाभ होगा, ऐसा समझकर तो लोग इस ओर प्रवृत्त हुए नही थे। वह तो एक धुन थी, चित्त मे एक उमग थी, कि नया काम करो, जो अब तक किसी ने न किया हो वह कर दिखाओ। इसी नशे मे लोगो ने हजारो कोस के मरुस्थल छान डाले, समुद्रो को गोष्पद बना डाला, गगनचुम्बी पहाडो की चोटियो से चरमस्पर्श कराया। यदि स्वार्थ और समझदारी को मनुष्य कभी-कभी छोड न देता तो वह आज भी जगल मे कडे ही बीनता रहता।

पहिले तो हवा मे उडना ही विकृत मस्तिष्क का स्वप्न जैसा लगता था। राइट बन्धुओ ने गुब्बारा उडाया। हवाई जहाज बने, धीरे-धीरे घर-घर फैल से गये। सफलता ने उत्साह बढाया, महात्वाकाक्षा बढी। वायुमडल के ऊपर जाने का विचार उठा। सबसे पहिले हरमन ओबर्थ ने १९२३ मे इस बात की सम्भावना की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यह खयाल उठा कि जिस प्रकार आतिशबाजी मे बान (राकेट) बडी तेजी से ऊपर उठता है वैसे ही कोई चीज फेंकी जाय। मूल मे इतना जोर होना चाहिए कि वह एक ही उछाल मे पृथिवी के आकर्षण-क्षेत्र के बाहर चली जाय, नही तो नीचे गिर जायगी। परन्तु ऐसी शक्ति कहाँ से आये जो किसी वस्तु को एक साथ कई हजार कोस ऊपर फेक दे? महायुद्ध ने इस प्रश्न का उत्तर दे दिया। हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरा, जापान ने घुटने टेक दिये, पृथिवी पर बडे-बडे राजनीतिक परिवर्तन हुए, मनुष्य को सामूहिक संहार का नया साधन मिला परन्तु यह भी विदित हो गया कि परमाणु शक्ति ही आकाश-यात्रा के लिए उपयुक्त ईधन है। युद्ध के बाद फिर लगन के साथ प्रयोग आरम्भ हुए। इस काम मे प्रत्यक्ष रूप से सरकारी सहायता तो बहुत कम प्राप्त हुई, प्रायः धनियो और विज्ञान-प्रेमियों ने निजी रुपया लगाकर विज्ञान के पण्डितो को ऐसे प्रयोग चलाने

का अवसर दिया। कुछ लोगो ने स्वयं ऐमे प्रयत्न किये। मनुष्य के प्राणों को जोखिम मे डालना तो था नही। यह विचार था कि राकेट मे फोटो और बिजली के ऐमे यत्र रक्खे जायं जो ऊपर से ही चित्र ले सके। यह बहुत कठिन न था पर राकेट का बनाना कठिन था। यदि शक्ति मे कुछ कमी हो तो वह पृथिवी के आकर्षण के प्रभाव से लौट आता, यदि कुछ अधिक हो जाय तो वह चन्द्रमा के आकर्षण के भीतर आकर उस पर जा गिरता।

गणना से यह बात सिद्ध थी कि यदि कोई वस्तु प्रति सेकड साढे तीन कोस (७ मील) के वेग से ऊपर जाय तो वह अपने से लौट कर न आयेगी। राकेट को उछालने के लिए ऐमी शक्ति चाहिए थी। लौटाने के लिए पृथिवी पर से ही राडार के द्वारा नियत्रण करना था। भगवान् भगवान् करके १९७० मे पहिला राकेट ऊपर गया। इसका निर्माण रूस मे हुआ। इसके बाद कई और बने। धीरे-धीरे लोगो का साहस बढा और ऐमे आकाशयानो को बनाने का विचार उठा जिनका नियत्रण पृथिवी से न हो वरन् भीतर बैठे हुए चालक करे। बीस वर्ष बाद १९९० मे पहिला आकाशयान चन्द्र-मंडल में पहुँचा। इसके चालक अंग्रेज थे। सन् २००० तक चन्द्रमा पर इन्दुपुर नगर बस गया। हवा पानी का कृत्रिम प्रबध करना पडता है, यों जगह रमणीक है, स्वास्थ्यकर है। वहाँ पैदा हुए बच्चो को देखकर ऐसा लगता है कि सौ-दो-सौ वर्षो मे एक नये प्रकार की मनुष्य-जाति बन जायगी। शुरू में जो यान बने उनके लिए बीच-बीच मे राकेटो पर ईधन रहता था। लाख दो लाख कोस चलकर वह राकेट से उसी प्रकार ईधन लेते थे जैसे मोटर १५०-२०० मील चलकर लेती है। पीछे से जहाज इस विषय मे स्वतत्र हो गये।

इधर मनुष्य नये ग्रहों पर बसने की बात सोच रहा था, उधर यह

प्रतीत हुआ कि कुछ दूसरे ग्रहो पर भी ऐसे बुद्धिमान् प्राणी है जो आकाश-यान बना सकते है। सघर्ष हुए, सधियाँ हुई। व्यापार होने लगा। सौर-मडल के भीतर आकाश-यात्रा वैसी ही प्रचलित हो गयी जैसी कि पृथिवी के ऊपर हवाई जहाज की यात्रा।

स्वभावत हौसले बढते गये। अब तो यह होड पडी थी कि सौरमडल के बाहर की सैर मे सबसे पहिले पृथिवी का जहाज जाता है या किसी अन्य ग्रह का।

आज यह सुसमाचार न केवल पृथिवी वरन् समस्त सौरमडल मे दौड गया कि इस प्रकार का पहिला प्रयास पृथिवीवासी करने जा रहे है।

जिस सारनाथ मे यह प्रयोग होने जा रहा था वह सौ वर्ष पहिले का सारनाथ न था। सडक पर इनका बाग था पर बाग के पीछे लगभग ढाई कोस का मैदान था। यह जमीन सरकार ने दिलवायी थी। यही चार वर्ष के परिश्रम मे जहाज तैयार हुआ था। कारखाना था, कई एजिन थे, रेल की पटरियाँ बिछी हुई थी। जो व्यक्ति इस विषय का अच्छा जान-कार न हो वह धातु के इस जगल से घबरा उठे। सारा निर्माण-कार्य विमलादत्त की देख-रेख मे हुआ था परन्तु उसमे बीसो इजिनियर और सैकड़ो कारीगर लगे थे।

अगले तीन दिन बडे परिश्रम के थे। ताजा भोजन तो कही मिल नही सकता था। टिनो मे फलो, शाको, मासो और अन्नो के सार और सत्त भरे गये थे। तात्कालिक उपचार के लिए औषध के बक्स थे। समय काटने को कुछ पुस्तके थी, कुछ खेल का सामान था। शस्त्र के स्थान मे दो तोपे थी जो गोलों के बदले बिजली की प्रचड किरणे छोड़ती थी। यह किरणे १५-२० हजार कोस की दूरी पर २-३ फुट मोटी लोहे की चादर को गला सकती थी। इसके सिवाय प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसा खड्ग था

जिसके स्पर्श से शत्रु बेहोश हो सकता था। उसमे एक बटन था जिसको दबाने से बिजली की किरण निकलकर मनुष्य को एक क्षण मे राख का ढेर कर सकती थी।

आकाशयान का चलाना बडा कठिन काम है। बडी कडी ट्रेनिग होती है। मुख्य चालक तो विमलादत्त थे परन्तु चालक का सर्टीफिकेट सब के पास था। आवश्यकता पडने पर इनमे से कोई भी जहाज को सँभाल लेता। पृथक् चालक ले लेना अच्छा होता, कई लोग तैयार थे, पर नया जहाज था और छोटा। विना अनिवार्य हुए व्यक्ति बढाना ठीक न था। इसी लिए कोई डाक्टर साथ नही लिया गया। रमेशचन्द्र को आवश्यक ट्रेनिग देकर डाक्टर मान लिया गया। जहाज के अस्पताल पर औषधोपचार के सिवाय चीरफाड का भी प्रबध था।

रमेशचन्द्र ने इस विभाग के काम को निबाह लेने का पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था

यो तो इस पर बहुत से यत्र थे पर उनमे से एक का थोडा सा वर्णन करना आवश्यक है। उसे "दृष्टिध्वनि" कहते थे। उसका आधारभूत सिद्धान्त सरल है पर अभी वैज्ञानिक उसे बनाने मे सफल नही हुए है। मान लीजिए, मेरे चित्त मे गऊ का विचार आया। युगपत् गऊ का चित्र सामने आ जायगा और एक गऊ शब्द मुँह से निकल जायगा। पर जो व्यक्ति मेरी भाषा नही समझ सकता उसके लिए यह शब्द बेकार है। वह मेरे विचार को नही समझ सकता। किन्तु इस यत्र की विशेषता यह थी कि किसी विचार के मन मे उठते ही उसकी मूठ पर हाथ रखने से एक पर्दे पर अनुरूप चित्र बन जाता था और अनुकूल शब्द निकलने लगते थे।

बहुत लोगो की सम्मति थी कि विदाई बड़े घूमधाम से हो, पर यह लोग इसके विरुद्ध थे। उनका आग्रह था कि यदि हम सचमुच कुछ काम

कर सके और खैरियत से लौट आये तो खुशी मनाने के लिए बहुत अवसर मिलेगे। अभी तो प्रयास है। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की प्रसन्नता होनी है, बैठना तो साधारण बात है।

यो तो यह प्रयास भी साधारण न था परन्तु सबने ही इनकी इच्छा का लिहाज किया। कुछ सरकारी और विद्वत्समाजो के प्रतिनिधियो तथा पत्रकारो के सिवाय प्राय. घर के लोग और अन्तरग मित्र ही उपस्थित हुए थे। काशी की जनता के लिए अपना उत्साह रोकना कठिन था। सवेरे जब यह लोग गगास्नान और विश्वेश्वर दर्शन करने के लिए निकले तो हर गली मे जय-घोष हो रहा था। सभी मुख्य मन्दिरो मे पाठ बैठाये गए थे परन्तु हवाई अड्डे पर ज्यादा भीड़ नही गयी।

—— —

पहिला पड़ाव

विजयादशमी, २०८५ -त्योहार का दिन और फिर बनारस मे तो हर मुहल्ले मे रामलीला होती है पर आज सारे नगर की दृष्टि सारनाथ की ओर थी। पडित की कोठी से थोडी दूर पर वह मैदान था जहाँ से जहाज उडने वाला था। यह पहिला जहाज था जो सोरमडल के बाहर जा रहा था। उस पर भारतीय जहाज और भारतीय उडाके। लोगो के चेहरो पर उत्कठा, उत्साह और आशा के साथ-साथ कुछ चिन्ता की स्पष्ट झलक थी। पत्रो के सवाददाता चारो मित्रो से भाति-भाति के प्रश्न करते जाते थे पर उनको बहुत कम उत्तर मिले। ऐसे अवसर पर कुछ अधिक कहना सम्भव भी नही होता।

छोटा सा यज्ञ हुआ। पुरोहित ने कलाइयो पर रक्षासूत्र बाधे, नमस्कार-प्रणाम, आशीर्वाद हुआ। ठीक तीन बजे "मरुत्वान्" भूमि से उठा और इसके पहिले कि जय हिन्द की प्रतिध्वनि शान्त हो और गीली आखो के आँसू सूखे, दृष्टिपथ मे ओझल हो गया। उस समय उसका वेग प्रति सेकेड लगभग चार कोस था। यदि इससे मद गति से चलाया जाता तो पृथ्वी का गुरुत्व नीचे खीच लेता। गुरुत्व और भी कई समस्याएँ उत्पन्न करता है। ग्रह छोटे-बडे होते है इसलिए ऊपर गुरुत्व भी न्यूनाधिक होता है। वही वस्तु बृहस्पति या शनि पर बहुत भारी, बुध पर बहुत हल्की हो जाती है। आकाश-यात्रियो को इस कठिनाई का बराबर सामना करना पड़ता है। बृहस्पति या शनि पर चलना दूभर हो जाता है, एक-एक पाव मन-मन भर का हो जाता है, उधर बुध या चन्द्रमा पर शरीर

इतना हल्का लगता है कि जरा-सा ऊपर उठाने से गेद की भाँति उछल पडता है। चन्द्रमा पर इन्दुपुर नाम का जो उपनिवेश बसाया गया है उसमें जो बच्चे पैदा हुए है उनकी ऊँचाई साधारण मनुष्यो से कई गुना अधिक है।

गुरुत्व सबसे बडी समस्या तो आकाशयान मे उत्पन्न करता है। पृथिवी से पर्याप्त दूरी पर पहुँच जाने पर यह तमाशा देख पडता है। क्योकि गुरुत्व से तो सहायता मिलती नही। यदि कोई चीज हाथ से छूट गई तो नीचे गिरने के बदले अधर मे तैरती रहेगी। यदि भीतर बैठे मनुष्य थोडी सी लापरवाही करे तो वह भी योही कमरे मे उडते देख पडेगे। इसलिए पृथिवीतल पर जितना गुरुत्व रहता है उतना जहाज के भीतर कृत्रिम उपायो से उत्पन्न करना पडता है। शक्ति एक है। वह विद्युत्, ताप, ध्वनि, प्राण आदि सैकडो रूपो मे अपने को व्यक्त करती है। परमाणु के भीतर प्रवेश करके मनुष्य के हाथ उसका बहुत बडा भडार लग गया है। इसी के सहारे वह प्राकृतिक गुरुत्व को तिरोहित करता है, कृत्रिम गुरुत्व उत्पन्न करता है, अपने यान को चलाता है, उसमे प्रकाश करता है, उसके तापमान को शरीर के अनुकूल रखता है। पर हम सारी आयु पृथ्वी पर रेगनेवाले इन बातो को भूल जाते है।

एक बार घर छोडने पर चित्त कुछ खिन्न-सा हो ही जाता है। बिदा होने के समय जो लोग उपस्थित होते है उनकी याद देर तक बनी रहती है और फिर माता, पिता, पत्नी जैसे अन्तरगों के चेहरे तो बहुत देर तक आँखो मे छाये रहते है। एक-एक मकान, मन्दिर, नदी स्मृति के बिखरे धागो को बटोरने का केन्द्र बन जाता है। जो वस्तुएँ पहिले कुछ बहुत अच्छी न लगती थी, उनमे छिपी कमनीयता प्रतीत होने लगती है। और इन लोगों की यात्रा तो निराली थी। आज तक सौरमडल के बाहर कोई गया न था। न जाने क्या हो जाय? जहाज ल्पर लौटे या न लौटे। यह

नदी, समुद्र और पहाड, गगा के यह घाट, फिर देख पड़ेंगे? घरवालो से, मित्रो से, फिर भेट होगी? पृथिवी कितनी रमणीक है और मनुष्य-समाज कितना प्यारा है, यह तो आज ही समझ मे आया। उत्साह था, कोतूहल था पर साथ मे एक अव्यक्त भय था, एक वेदना थी। यह कमजोरी है, पर इसी दुर्बलता ने मनुष्य को महान बनाया है।

पहिले तो इन लोगो ने सोचा था कि उसी दिन सौरमडल के बाहर निकल जायँ परन्तु पडित का कहना था कि अल्पारम्भ. क्षेमकरः। पहिला कदम छोटा होना चाहिए। ऐसा ही किया गया। शनि के उपग्रह टाइटन पर आकाश-यात्रियो के लिए होटल है, यानो की मरम्मत का बड़ा कारखाना है। वही पृथिवी की सशस्त्र पुलिस की अन्तिम चौकी है।* कुछ लोगो ने आकाशयानो को लूटमार का साधन बनाना चाहा। दूर-दूर के ग्रहो पर छिपने-छिपाने का अच्छा अवसर मिलता ही है, इसी लिए सयुक्त राष्ट्रो की ओर से इस प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ी। टाइटन का इतना भाग अन्ताराष्ट्रीय नियन्त्रण मे है। पर अभी यह व्यवस्था स्थायी नही है। इन मार्गो पर दूसरे ग्रहो के भी आकाशयान चलते है। शुक्र ओर मगल के निवासी तो इस विद्या मे बहुत पटु है। स्वभावत. उनको पृथ्वीवालो के नियन्त्रण मे काम करना पसन्द नही है। अत. दो ही उपाय रह गए है, या तो आपस मे युद्ध हो या कोई अन्तर्ग्रह सस्था बन जाय जिसमे सभी ग्रहो के प्रतिनिधि मिलकर इन बातो का प्रबन्ध करे। आजकल इन्ही प्रश्नो पर विचार करने के लिए सौरमडल के सभी सभ्य ग्रहो के प्रतिनिधियो की बैठक ईरास पर हो रही है। ईरास की सरकार आतिथ्य कर रही है। ईरास मगल और गुरु के

* स्वय शनि का वायुमडल बहुत घना है और अमोनिया गैस से भरा है। उसमें साँस लेना सभव नही है।

२

बीच में एक अवान्तर ग्रह है। है तो बहुत छोटा सा पिंड पर उसकी सस्कृति बडी ऊँची है।

यह लोग इसके पहिले भी शनि प्रान्त मे आ चुके थे पर आज वह अधिक प्रिय लग रहा था। इनके लिए वह सुपरिचित सौरमडल और अपनी पृथ्वी का प्रतीक बन गया था। सूर्य २ करोड़ ३२ लाख कोस दूर था। उससे बहुत कम गर्मी मिल रही थी। उसका पीला कलेवर प्रकाश भी कम दे रहा था, फिर भी देखने में प्यारा लगता था। टाइटन के होटल के बाग में चीड़ देवदारु के सजातीय जो वृक्ष थे उनको कल्पना ने मखमल का चादर ओढा दिया था।

संध्या हुई। सबलय शनि उदय हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने इस ग्रह को तीन लड़ो की रत्नमेखला पहिना दी है। उस दिन टाइटन के अतिरिक्त चार चन्द्रमा क्षितिज के ऊपर थे। शनि पर से मेखला मे चलते-फिरते हीरों से लग रहे होगे। सूर्य्य की दूरी ने अँधेरे को घना बना दिया था पर मेखला के असख्य कणो से टकराकर झीना प्रकाश भी आकाश को अद्भुत सौन्दर्य दे रहा था। हम पृथिवी पर से उसका अनुमान नही कर सकते।

होटल मे पृथिवी जैसा भोजन मिला। इसके आगे न जाने कितने दिनों के लिए टिन में भरे खानो से ही काम चलाना था।

कारखाने के इजिनियर ने जहाज को देखा। उसमें कोई खराबी न थी। पृथिवी के लिए अन्तिम निःसूत्र सन्देश भेजा गया और दूसरे दिन मरुत्वान् निष्पथ गगन मे उतर पड़ा। टाइटनस्थित पार्थिवों के मूक आशीर्वाद उसके साथ थे। जहाज का मुँह चित्रा की ओर था।

आकाश-गंगा की धारा में

इनका विचार था कि पहिले चित्रा प्रदेश मे भ्रमण करे, फिर अभिजित् होते हुए सप्तर्षि-मडल मे प्रवेश करे। उन दिनो सूर्य्य कन्या राशि मे था, इसलिए चित्रा एक प्रकार से बहुत निकट प्रतीत होता था।

ज्यों-ज्यों जहाज आगे बढ रहा था, सौरमडल पीछे छूटता जा रहा था। ग्रह तो कब के अदृश्य हो चुके थे। सूर्य्य भी छोटा-सा पीला तारा मात्र रह गया था। अभिजित् तक पहुँचते-पहुँचते स्यात् उसके लिए दूरबीन की आवश्यकता पडेगी।

आकाशगगा को हम प्रतिदिन देखते है। उसके मुख्य तारो और तारक-पुंजों को पहिचानते है। हमारा सूर्य्य स्वय उसमे है। हमने पढ रक्खा है कि इस नीहारिका मे कम-से-कम १ अरब तारे है और विश्व मे कम-से-कम १ करोड़ नीहारिकाएँ है। पुस्तकों में यह सब लिखा है। ज्योतिषियों ने एडी-चोटी का पसीना एक करके उस ज्ञान का संग्रह किया है। परन्तु पुस्तक-पुस्तक ही है। वह वास्तविकता की छाया के पास भी तो नही पहुँचाती।

इनका जहाज आगे बढ़ा जा रहा था। निराधार, अनन्त, नि.सीम, जैसे शब्दो का अर्थ अब बुद्धि में समाता जा रहा था। पृथ्वी पर तो वायुकणो के कारण आकाश में नीलिमा की प्रतीति होती है पर शून्य में न वायु है न नीलिमा। घोर, निबिड़, कालिमा और उसके वक्ष को चीरकर प्रकाश के छोटे-बडे बिन्दु। आगे, पीछे, चतुर्दिक् अन्धकार। वस्तुतः इस जगह पहुँचकर आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, दाहिने, बायें का कोई

अर्थ नही रह जाता। जहाँ निकटतम नक्षत्र अरबों कोस दूर हो वहाँ अपनी गति का भी अनुभव नही होता। हाँ, डाप्लर का नियम निश्चय ही सहारा देता है। यह नियम बहुत ही सरल है। यदि हम भीड़ मे पड़ जायँ तो जिस दिशा मे हम बढ रहे होगे उधर की भीड छँटती-सी प्रतीत होगी और हमारी पीठ की ओर घनी होती सी देख पडेगी। यही बात आकाश मे होती है। जिस ओर हम बढ़ते है, उधर के तारे कुछ खुलते से लगते है। उसकी विपरीत दिशा मे पास आते से प्रतीत होते है। इस प्रकार हम बहुत दूरी से भी उस दिशा का अनुमान कर सकते है जिस ओर हम बढ़ रहे है। सूर्य्य स्वय अपने ग्रह-परिवार के साथ अभिजित् की ओर बढ़ता जान पड़ता है परन्तु मरुत्वान् तो सूर्य्य को कब का छोड चुका था। उसको सूर्य्य की गति से कोई सहायता नही मिल सकती थी। केवल यह बात न न थी कि जहाज के चलने से तारे हटते-बढ़ते देख पड़ते थे। उनमे वास्तविक गति थी। आकाशगगा मे कई धाराएँ सी प्रतीत होती थी और एक-एक धारा मे लाखो तारे बुद्बुदो की भाँति बहे जा रहे थे। कही तारो के परिवार थे। एक दूसरे से अरबो कोस दूर होते हुए भी परिवार के तारो की गति एक दूसरे से बँधी थी, जैसे कदम मिलाकर चलते हो। किसी-किसी परिवार मे कई रगो के तारे थे। यदि इनके साथ ग्रह होंगे तो उनमें एक साथ कई रग-बिरंगे सूर्य्य उदय होते होगे।

नीहारिकाएँ ही वह सलिल, वह अप् तत्व है जिसमे से असंख्य सूर्य्यों का जन्म हुआ है, जिसमे यह सब फिर विलीन होगे। इनकी आँखों के सामने सृष्टि का खेल हो रहा था। जगह-जगह पर नीहारिका मे फैले हुए गैस के अणु एक दूसरे को आकृष्ट करके पास आ रहे थे। करोड़ो कोस का विस्तार लाखो मे संकुचित हो रहा था, सन्निहित परमाणुओ का टकराना प्रकाश और तेज को जन्म दे रहा था, नयी गैसो, नये तत्वो को जन्म दे

रहा था। जो कुछ इनकी आँखें देखती थी और जो संस्कार इनके कैमरा के प्लेटो पर पड रहे थे वह इस बात की सूचना दे रहे थे कि यह पुंज एक दिन सूर्य्य और नक्षत्र-गुच्छ बनेंगे। नीले बाल-सूर्य्य, श्वेत युवा सूर्य्य, पीत प्रौढ सूर्य्य और लाल वृद्ध सूर्य्यो के ढेर-के-ढेर मिलते थे। पता नही इनमे से किस-किसके साथ ग्रह थे और किस-किस ग्रह पर प्राणी बसे हुए थे। मृत सूर्य्य भी थे और उनसे खतरा था। वह सर्वथा ज्योतिर्हीन है, इसलिए अदृश्य हो गए है। बस निकट आने पर गुरुत्व ही उनका परिचय देता था। एक और बात थी। कभी-कभी कोई मृत सूर्य्य किसी दूसरे खेचर पिड से टकरा जाता था, कभी उसके भीतर ही ज्वालामुखी सा फूट पडता था। थोडी देर के लिए आकाश के उस प्रदेश मे नया तारा देख पड जाता है। ऐसे समय ताप और विद्युत् की जो लहरे उठती है उनके थपेडो से बचना कठिन होता है।

आकाश मे नदी की भाँति आवर्त, भँवर, होते है। परमाणुओं के सघर्ष, नये पिंडो के बनने और पुराने पिंडो के टूटने से, बिजली की प्रबल तरंगे उठती है। इनके आघात-प्रतिघात से आकाश का कोई-कोई खड विद्युन्मय बन जाता है। उसकी नाभि मे पड़कर जहाज की खैरियत नही हो सकती। इसी लिए इच्छा रहते हुए भी मरुत्वान् बहुत से दृग्विषयो से दूर ही रक्खा जाता था।

जहाँ कोई बड़ा मकान बनता है वहाँ कुछ-न-कुछ मलवा बच रहता है। ईट के टुकड़े, बालू और सीमेंट के कण, इधर-उधर पडे रह जाते है। यही अवस्था ब्रह्माड मे भी है। सूर्य्य, ग्रह, उपग्रह बनते है पर कुछ सामग्री बच रहती है। छटाँक दो छटाँक से लेकर दस-बीस मन के टुकड़े यो ही फिके फिरते है। यदि यह पुजीभूत हो जाते तो इनसे कई बड़े-बड़े ग्रह बन जाते पर अब तो यह ठढे हो गए है, मिल नही सकते। अगस्त और नवम्बर

मे पृथिवी दो ऐसे ढेरो के बीच मे से निकलती है। उन दिनों गुरुत्व इनमे से हजारों को खींच लेता है। तारो के टूटने से आतिशबाजी का आनन्द आता है। इसी प्रकार उल्कापात के रूप मे यह ग्रहो पर गिरते और छीजते जाते है। कुछ केतु रूप से लम्बा वृत्त बनाकर किसी सूर्य्य की परिक्रमा करते है। हाली केतु को हमारे सूर्य्य की परिक्रमा मे पचहत्तर वर्ष लगते है। पर कुछ ऐसे भी टुकडे है जो आकाश मे अकेले निरुद्देश्य चल रहे है। कब से चल रहे है, कहाॅ जा रहे है, कोई नही कह सकता। सम्भव है नियति के विशाल उद्देश्य के भीतर इनके लिए भी कोई स्थान हो।

आकाश के इन बटोहियो से जहाज का पदे-पदे सामना होता था। बडो को तो किसी प्रकार बचाया जा सकता था, पर छोटो से कहाँ बचा जाय? यदि जहाज की बनावट मजबूत न होती तो इस गोलेबारी से कब का चकनाचूर हो जाता। यदि पृथिवी होती तो हवा के कणों से रगड-कर यह पिड जल उठते, पर यहाॅ तो हवा थी नहीं, अँधेरे मे ही बरसते रहते थे।

आकाशगगा के बीच मे जितने तारे है, उतने अंचल पर नही है। यहाॅ करोड़ों कोस तक कुछ न होते हुए भी तारों की और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दृग्विषयो की भरमार थी। जिधर आँख उठती थी कोई-न-कोई महती, कोई-न-कोई सुन्दर, कोई-न-कोई भयावनी कृति दृष्टिगोचर होती थी। यदि "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति" रमणीयता का लक्षण हो तो यह नीरव, निःसीम, आकाश रमणीयता का चिर-क्रीड़ास्थल था।

रस में विष

इन लोगो का जी बार-बार चाहता था कि रुककर किसी ग्रह की सैर की जाय। कुछ ग्रह ऐसे मिले जिन पर या तो वायुमडल था ही नही या उसमे क्लोरीन, गन्धक, कार्बोनिक ऐसिड या किसी अन्य ऐसी गैस की बहुतायत थी जिसमे मनुष्य साँस नही ले सकता था। चित्रा सुन्दर तारा है, हमारे सूर्य्य से बड़ा है। उसके चारो ओर कई ग्रह और कुछ ग्रहो के साथ उपग्रह भी देख पड़े। इन लोगों ने एक ग्रह को पसन्द किया। यत्रो से पता चला कि उसका वायुमंडल पृथिवी से मिलता-जुलता है यद्यपि उसमे कार्बन किंचित् अधिक है। जल भी पर्याप्त मात्रा में है। हरियाली ऊपर से ही देख पड़ती थी। थोड़ी देर तक मँडलाने के बाद एक समथर मैदान देखकर जहाज उतारा गया। संध्या होने आयी थी।

इतने दिनो तक बन्द रहने और कृत्रिम हवा से साँस लेने के बाद यह लोग इस भूमि पर पाँव रखते फूले न समाये। अँगडाई ली, हाथ-पैर सीधा किया, जी भरकर खुली हवा फेफड़ों मे भरी। यह विचार हुआ कि आज के दिन तो दूर न जाया जाय पर दूसरे दिन यहाँ की सैर की जाय। देखा जाय कि यहाँ कोई पशु-पक्षी भी रहते है या नही। सम्भव है मनुष्य जैसा कोई बुद्धिशील प्राणी भी हो।

मैदान के चारों ओर कोसों तक वृक्ष थे। उनकी पत्तियाँ पीपल से मिलती-जुलती थी परन्तु वृक्ष की उँचाई पीपल की दूनी से कम न थी। तमाशे की बात यह थी कि संध्या का समय था परन्तु चिड़ियों का कलरव बिल्कुल नही सुन पड़ता था। इस ओर इनका ध्यान जाना स्वाभाविक था।

थोडी देर तक आपस मे इसका चर्चा रहा। फिर यह सोचकर कि थोडी देर टहल लेना लाभदायक ही होगा, यह लोग एक ओर बढ़े। पेडों का झुरमुट वहाँ से दो या ढाई कोस के लगभग होगा।

जिस समय जहाज उतरा था, हवा चल रही थी। डालियाँ हिल रही थी, पत्तियों का मधुर मर्मर सुन पड रहा था। जहाज के उतरने के बाद ही हवा बन्द हो गयी, प्रकृति जैसे निस्तब्ध-सी हो गयी। पहिले तो इन लोगों का ख्याल उधर नही गया परन्तु वृक्षो की ओर पॉव बढाते ही एक ऐसी घटना हुई जिसने उस दृग्विषय का स्मरण कराया। निस्तब्धता यकायक भग्न हुई। बडे वेग से हवा चली, पेड़ हिलने लगे। नीरवता को चीरकर घोर रव हुआ। पेडो का हिलना और उनके हिलने से शब्द का उठना कोई विलक्षण बात न थी। परन्तु यह साधारण शब्द न था। इसमे हुकार था, धमकी थी, उलाहना था, ललकार थी। इसका स्रोत हवा और पत्तियो की रगड न थी, स्पष्ट ही यह किसी प्राणी का उद्गार था।

कम-से-कम हमारे यात्रियो को ऐसा ही प्रतीत हुआ। इनके शरीर सिहर उठे, पॉव रुक गये।

रमेश—भाई न जाने मुझे क्यो डर लगता है। यह आवाज आयी तो इन पेड़ों से ही पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमको चेतावनी दी जा रही हो कि दूर रहो।

अद्वैत—परन्तु वृक्ष और चेतावनी, यह बात कुछ समझ मे न आयी।

पंडित—इसमे जरा भी असम्भावना नही है। चेतना का निवास सर्वत्र है पर कही वह इतनी दबी रहती है कि हमें उसका पता नही लगता और हम जड़ शब्द का प्रयोग कर देते है। हमारे वृक्षों में चेतना प्रसुप्त नही तो स्वप्नगत-सी है। आज बोस के बाद जो प्रयोग हुए है इनसे यह बात सिद्ध हो चुकी है। यह सर्वथा सम्भव है कि किसी

अन्य परिस्थिति में इसके विपरीत हो अर्थात् वृक्षो की चेतना जागरित हो जाय, उनकी बुद्धि का विकास हो। वह अचल है इसलिए उनकी बुद्धि अपने लिए हमसे भिन्न प्रकार के साधनो का उपयोग करेगी। उनके सामने जीवन के जो लक्ष्य होगे उनकी हम कल्पना भी नही कर सकते।

अद्वैत—तो क्या प्रत्येक वृक्ष मनुष्य की भाँति पूर्ण चेतन प्राणी हो सकता है?

पंडित—हो सकता है। है या नही, यह मै नही कह सकता। एक बात और हो सकती है। जिस प्रकार हमारे शरीर के असख्य जीवकोष जीवित है परन्तु सब के ऊपर एक व्यापक चेतना, जीवात्मा, है उसी प्रकार सब वृक्षो मे आशिक जीवन हो और इनकी समष्टि मे इनके विराट चेतन का निवास हो। क्या है मै नही कह सकता, परन्तु हम आज नये अनुभव के समक्ष हैं।

इधर इन लोगो मे यह बातें हो रही थी, उधर नरेश एक छोटे पेड की ओर बढ गया जो औरो से कुछ आगे था। उसके उधर बढ़ते ही फिर सन्नाटा छा गया और वह पेड़ पीछे की ओर झुका। प्रत्येक डाली नरेश की ओर से हट गयी। और फिर सारा वृक्ष नरेश पर टूट पडा। उसने नरेश को पत्तियों मे लपेट लेना चाहा। पत्तियाँ जहाँ छू जाती थी, बिच्छू के डंक मारने-सा लगता था। कई जगह लहू-लुहान हो गया। सब लोग उसकी सहायता को दौड़े पर तब तक नरेश किसी प्रकार अलग हो गया था। पेड उसकी ओर झुका पर उसने अपने खड्ग की भस्मक किरण से उसे राख का ढेर बना दिया। उसके भस्म होते ही सन्नाटा फिर टूटा। पेडों से फिर क्रोध की गरज निकली, पर इस बार उसके साथ भय का सञ्चारी स्वर भी मिला हुआ था।

यह लोग लौट पड़े। नरेश की मरहमपट्टी तो करनी ही थी। आगे

का कार्यक्रम भी सोचना था। रात हो आयी थी। उस समय कुछ हो भी नही सकता था। इनको इतना भरोसा था कि अन्ततोगत्वा यह वनस्पति है, हमारे पास नही आ सकते और फिर हमारा जहाज अष्टधातु से भी मजबूत है। सब खिड़की किवाड़ो को बन्द कर के आराम से सोये।

प्रातःकाल इन लोगों ने जो देखा उससे इनके छक्के छूट गये। जगल बहुत आगे बढ आया था। जड़ें चारों ओर फैली हुई थी। उनमे से पेड़ निकल रहे थे। भूमि पथरीली थी, सम्भवतः इसी से मैदान बच रहा था पर अब तो प्राणों की बाजी लगाकर जड़े चट्टानों से लड रही थी। यदि यो ही प्रगति रही तो सायंकाल तक पेड़ों का अभेद्य आटोप बन जायगा और जहाज का निकलना असम्भव हो जायगा।. इतना ही नही था। भूमि मे से निकलकर बहुत-सी बेलों ने जहाज को घेर लिया था और उसे रस्सियों से जकड लिया था। एक डाल काटिये, दूसरी निकल आती थी।

यहाँ टिकना प्राणों से हाथ धोना था। जल्दी से निकल जाना श्रेयस्कर था। सबसे पहिले तो बेलो से छुटकारा पाना था। बिजली से जलाना पड़ा, जहाज के चारो ओर की भूमि पर सूखी पत्तियों और डालों मे आग लगायी गयी, तब जाकर यह शत्रु रुका।

परन्तु पेड़ जागरूक थे। उनको यह अवगत हो गया कि शिकार हाथ से निकल जाया चाहता है, उन्होने नये अस्त्र का प्रहार किया। उनकी पत्तियो पर पानी के बूंद जम गये जो बडे होकर टपटप भूमि पर गिरने लगे। भूमि पर गिरते ही पानी भाप बन जाता था। देखते-देखते ऊपर बादल छा गया और उसमें से बिजलियाँ टूटने लगीं। शत्रोरपि गुणा वाच्या:; अपनी रक्षा की चिन्ता तो थी ही पर वनस्पतिराज के इस व्यावहारिक विज्ञान की प्रशसा इन लोगों के होठों पर भी थी। खैरियत यह थी कि इस प्रहार का प्रतिकार इनके लिए कठिन न था। ऐसी

परिस्थितियो के लिए पहिले से ही प्रबंध था। जहाज के चारो ओर विद्युच्छत्र, बिजली का इतना प्रबल घेरा जिसको भेदकर बाहर की बिजली भीतर न आ सके, फैला दिया गया। यह कठिन बात न थी। ऋण और धन विद्युत् एक दूसरे को काटती है। बाहर के बादलो से जितना धन विद्युत् गिर रहा था उतनी ही मात्रा मे जहाज के चारो ओर ऋण विद्युत् का जाल बिछा दिया गया। दोनो ने टकराकर एक दूसरे को हतप्रभ कर दिया। जहाज बाहर निकल गया।

जगल एक बार फिर गरजा। उसकी तात्कालिक हार हुई। एक व्यक्ति मारा गया। शत्रु भाग तो गया पर इस देश का परिचय पा गया। हो सकता है कि दूसरी बार वह और दल-बल समेत आये और जगल को नष्ट करके अपना उपनिवेश बसाये, सम्भव है जगल के चित्त मे यह बिचार स्फुट या अस्फुट रूप से उठ रहे हों। परन्तु हमारे यात्री कुछ और ही सोच रहे थे। एक दिन मनुष्य यहाँ फिर आ सकता है, यह भूमि उसके बसने योग्य है पर यह वृक्ष भी सावधान हो गए है। तब तक विज्ञान मे यह न जाने कितनी उन्नति कर लेगे। मनुष्य और वनस्पति के युद्ध में मनुष्य की ही जीत होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

पंडित ने इस प्रदेश का नाम अन्तकारण्य रख दिया।

संध्या और प्रभात

(क) संध्या

कुछ दिनो के लिए तो ग्रहों की सैर की साध पूरी हो गयी पर जो कुतूहल उनको इतनी दूर लाया था वह भला कब तक सोता। आखिर घर से इसी लिए तो निकले थे। फिर किसी ग्रह पर उतरने का निश्चय किया गया।

स्वाति बोओते पुंज का एक तारा है। हमारे सूर्य्य का समकक्ष है। उसके साथ कई ग्रह है। जलवायु की दृष्टि से सभी उपयुक्त प्रतीत हुए। एक दिन यह लोग उनमें से एक पर उतरे। उसका नाम इन लोगो ने आगे चलकर अन्धकार रखा। एक पहाड़ी की उपत्यका मे जहाज उतारा गया। छोटी सी नदी बह रही थी। फलो के वृक्ष थे, जो पृथिवी के फलों से मिलते-जुलते थे। कुछ छोटे पशु भी देख पड़े जिनकी आकृतियाँ बहुत अपरिचित नही थी परतु सब के शरीर लम्बे बालो से ढँके थे। यह जलवायु की कोई विशेषता रही होगी।

बहुत दिनो के बाद बहते पानी में नहाने और ताजे भोजन खाने का अवसर मिला था। शिकार किया, ताजा मास मिला, फल थे ही। थोड़ी देर धूप मे आराम किया, फिर आगे बढे।

जो दृश्य सामने आया उसने आश्चर्यचकित कर दिया। एक बार तो आँखों को विश्वास न हुआ। पहाड़ से थोडी दूर पर एक विशाल नगर का ध्वस्तावशेष था। पहाड़ी नदी के किनारे बसा था। सगमर्मर जैसे किसी

पत्थर के घाट बने थे, जो अब प्राय. टूट चुके थे। बडे-बडे प्रासाद, कई मजिल ऊँचे घर, चौडी सडके, दूकान, सभी इस नगर की अतीत सम्पन्नता की साक्षी दे रही थी। लकडी के सामान को तो दीमक नष्ट कर चुके थे परन्तु धातु के बड़े-छोटे बर्तन बच रहे थे। मकान प्राय: पत्थर के थे, उन पर की बारीक कारीगरी अब भी कुछ-कुछ बच रही थी। एक विशाल भवन मे जो किसी समय वेधालय रहा होगा, अब भी ज्योतिष के यत्र रखे हुए थे। एक पुस्तकालय भी मिला। उसमे किसी धातु के पतले पत्रों पर खुदी बहुत-सी पुस्तके सुरक्षित थी। नगर मे कई बाग थे पर उनकी क्यारियो मे जगल उग आया था, फौवारे टूटे पड़े थे। धातु के कुछ ऐसे कल-पुरजे भी इतस्तत. पडे मिले जो सम्भवत: मोटर-जैसी किसी सवारी के अग थे। नगर के बाहर कभी खेत रहे होंगे पर अब वहाँ घना जगल था। बीच-बीच मे कुओ और मकानो के खँडहर देख पड़ जाते थे।

निश्चय ही यहाँ किसी समय सभ्य लोग रहते थे। उनकी सस्कृति का स्तर ऊँचा रहा होगा। विद्याव्यसनी थे, विज्ञान में पटु थे। इनकी आकृति का अनुमान पत्थर और धातु की मूर्तियो से हो सकता था। लम्बे और हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले लोग थे, चेहरे की बनावट मगोल ढग की, चीनियो से मिलती-जुलती थी परन्तु सारा शरीर बड़े-बडे बालो से ढँका था। इस प्रकार की मूर्तियों की बहुतायत से अनुमान होता था कि वह तत्कालीन नर-नारियो को देखकर बनायी गयी थी।

यह लोग क्या हुए? सब के सब नष्ट हो गए या सन्तति छोड गए? दो-चार दिनो मे इस प्रश्न का उत्तर मिल गया।

मुख्य नगर से कुछ दूर पर एक छोटी बस्ती थी। कभी वह उपनगर रहा होगा। वहाँ छोटे-छोटे बाग और घर थे। नदी भी बगल से बह रही थी। एक दिन यह लोग उधर निकल गए। अभी बस्ती मे प्रवेश भी नही

किया था कि मनुष्यो जैसी बोली सुन पड़ी, चौंके। इतने में सामने से २०-२५ व्यक्ति निकल आये। पीला रग, चीनी बनावट, वही बालों से लदे शरीर, पर उनमे से कोई भी पाँच फुट से ऊँचा न था। कई तो बौने से लगते थे। अपनी बोली मे कुछ गा रहे थे। स्वर बच्चो जैसा, राग मे दर्द था। चेहरो से भी निराशा टपकती थी। इन लोगों को देखकर ठिठके, फिर डरते-डरते आगे बढ़े, पास आकर पैरो पर गिर पडे। बहुत पुचकारने पर खडे हुए। यह स्पष्ट हो गया कि जिन भीमकाय महापुरुषो ने पास के नगर का निर्माण किया था उनके ही यह गए-बीते वशज है।

अब न तो वह भारत की भाषा समझते थे, न हमारे यात्री उनकी बोली जानते थे। ऐसे ही अवसर के लिए दृष्टिध्वनि यन्त्र रक्खा था। उसके द्वारा इन लोगों के इतिहास का जो परिचय मिला उसका साराश यह है:

बहुत काल बीते जब सृष्टि का आदियुग था, इन लोगों के पूर्वज कही बहुत दूर से इस ग्रह पर आए थे। वह लोग तुर्वसु कहलाते थे और ऊषा, पूषा, नासत्य, महोवा और इग्नि की उपासना करते थे। वह इस ग्रह को ऐलवर्त कहकर पुकारते थे। यहाँ वह लोग फले-फूले, सारे देश में फैले। नगर बसाये, राज्य का विस्तार किया। उन लोगों ने बड़े प्रबल यन्त्र बनाये, जिनकी सहायता से वह दूसरे ग्रहो पर जा सकते थे और घर बैठे सहस्रों कोस की वस्तुओं को अपने यहाँ मँगा सकते थे। ज्यों-ज्यो ऐसे यन्त्र बनने लगे, त्यो-त्यो उन्होंने हाथ से काम करना छोड़ दिया। जब बिना परिश्रम के सब चीजें प्राप्त हो सकती थी तो फिर श्रम क्यों किया जाय? इसका परिणाम कुछ ही पुश्तों मे देख पड़ा। शरीर छोटे और दुर्बल हो गए, चित्त भी आलसी हो गए, काम न होने से विलासिता बढ गयी। गम्भीर विषयों मे रस जाता रहा, विज्ञान और कला की उन्नति रुक गई। कई रोगो ने जनसख्या घटा दी। इनका एकमात्र सहारा इनके यन्त्र थे पर

अब उनको चलाए कौन ? यन्त्रो को चालू रखने के लिए विज्ञान मे नयी खोज होती रहनी चाहिए। जो शक्ति मशीनों को चलाती थी उसका भडार भूगर्भ मे था। उसपर थोडे से स्वार्थी लोगों ने कब्जा कर लिया। कुछ दिनो तक उनका आधिपत्य रहा। शेष जनता उनकी क्रीतदास हो गई पर अन्त मे वह आपस मे लड पडे और यन्त्र-सचालन की विद्या उनके साथ विलीन हो गई। ऐलवर्त का साम्राज्य और सुख-समृद्धिकाल भी समाप्त हो गया। बाहर से वस्तुओं का आना बन्द था, स्वय न खेती करने की शक्ति थी न कुछ अन्य वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता थी। प्रकृति ने सब कुछ दे रक्खा था पर हृदय मे उत्साह नही रह गया था। कुछ फल-फूल और कद-मूल खाकर दिन बिता रहे थे, शिकार करने का भी शौक नही था, रात मे उन्ही खँडहरो मे छिपकर सो रहते थे । कभी-कभी पशु भीतर घुसकर एकाध को उठा भी ले जाते थे । दिनोदिन सख्या घटती जा रही थी। अपनी जाति की मृत्यु के दिन गिन रहे थे। देश में ऐसे कई और नगर और बस्तियाँ थी, वहाँ भी ऐसे ही थोड़े-थोडे व्यक्ति पड़े थे।

यह सारा वृत्तान्त कई बैठको में मिल पाया। वह लोग पढना-लिखना जानते न थे, इतिहास भला क्या बता पाते। कुछ कहानियाँ, कुछ गाथाएँ, कुछ गाने, ही अतीत की स्मृतियो का भार ढो रहे थे। इनके उच्चारणकाल मे दृष्टिध्वनि के पट पर जो चित्र बनते थे वह बहुत ही अस्पष्ट और भ्रामक होते थे। उनके पीछे भावना, ममता, उत्साह का अभाव होता था। किसी प्रकार जोड-जोडकर इतना इतिवृत्त बन पाया। इन लोगो ने इस बात का बहुत यत्न किया कि इन अभागों मे कुछ स्फूर्ति फूंके। पूर्वजों के कृत्यों को दिखलाकर कुछ साहस का संचार करायें परन्तु सारा यत्न विफल हुआ। कोई-कोई मनुष्य असफलताओं के निरन्तर थपेडों से थककर जीवन से निराश हो उठता है परन्तु एक सम्पूर्ण जाति मे यह बात कभी

देखी नही गयी। कई हजार मनुष्य-जैसे प्राणी निरुद्यम होकर अपनी सामूहिक मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे थे।

यो तो किसी भी विपन्न के साथ सहानुभूति होती है पर यहाँ तो समवेदना का एक और कारण था। इनके इतिहास की कडियाँ भारत से मिलती थी। तुर्वसु जाति का ऋग्वेद मे उल्लेख है। ऊषा (उषा), पूषा, नासत्य, इग्नि (अग्नि) और महोवा (मघवा) वेदिक देवताओ के नाम है। देश का नाम ऐलवर्त उस इलावर्त से मिलता है जिसका पुरानी पुस्तको मे उल्लेख है। क्या आर्यो की कोई शाखा यहाँ आकर बसी थी ? बहुत दूर से आने की स्मृति तो इसी बात की ओर सकेत करती थी। पर कब आये, कैसे आये ? यदि नही आये तो आर्य्यो के परिचित नाम यहाँ कैसे पहुँचे ? क्या सचमुच आर्य्यजाति की एक शाखा अवसाद के गर्त मे गिर रही थी ? जो भी हो, आँखों के सामने एक जाति के जीवन की सध्या रात्रि के अंचल में सदा के लिए छिपने जा रही थी।

इन लोगो को इनके भाग्य पर छोड़ने के सिवाय कोई उपाय न था। विदा होने के पहिले इन्होने वहाँ की यादगार में कुछ धातुमयी पुस्तकें रख ली, ज्योतिष-सम्बन्धी एकाध छोटा यन्त्र उठा लिया और पत्थर की कारीगरी के दो-एक नमूने ले लिए।

(ख) प्रभात

इस मुमूर्षुलोक के निवासियो के अल्पकालीन सहवास ने हमारे यात्रियों पर भी कुछ तो अपना जादू डाला ही। नैराश्य की कोई बात तो थी नही, पर उनका भी उत्साह कुछ ठंढा सा हो गया। किसी ने मुँह से कुछ नही कहा, परन्तु एक बार सबके मन मे यह विचार दौड़ गया कि घर लौट चले। इतनी यात्रा बहुत है, और जो कुछ देखा-सुना जायगा उसमे बहुत नवीनता क्या होगी ? और हुई भी तो फिर क्या, अन्त में तो मरना है। व्यक्ति,

राष्ट्र, जाति, सभ्यता, कुछ भी तो चिरस्थायी नही है। सब से पहिले पडित ने अपने को सँभाला। उनके दार्शनिक अध्ययन से बडा सबल मिला। जहाँ केवल भौतिकता का गर्व चूर्ण हो जाता है और वह परकैंच कबूतर की भाँति लडखडाकर गिरने लगती है वहाँ आध्यात्मिकता सहारा देती है। भौतिक शक्ति अगत्या अपने आप तक ही सीमित रहती है। अध्यात्म वह वृत है जिसका केन्द्र सर्वत्र है परन्तु व्यास का कही ओर-छोर नही है। चरित्र की परख आकाश को गोष्पद के समान पार करने मे नही वरन् प्रत्येक अवस्था मे निर्वातस्थान मे रखी दीपशिखा के समान स्थिर और निश्चल रहने मे है। कुछ देर मे

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भू, मा ते सगोऽस्त्वकर्म्मणि ।।

के सिद्धान्त के सामने कृत्रिम वैराग्य समाप्त हो गया।

तब यह निश्चय हुआ कि इस परिवार का एक ग्रह और देखा जाय। सम्भव है उस पर भी मनुष्य हो, उन लोगो ने भी सभ्यता का विकास किया हो। कौन जाने, वहाँ भी इस बात का कोई प्रमाण मिले कि किसी समय भारत की सस्कृति की प्रतिध्वनि करोडों कोसों के पार तक पहुँचती थी।

जिस ग्रह को इन लोगो ने चुना वह तीन-चार घंटे की दूरी पर था। जलवायु उसका भी ठीक था। उस पर भी घने जगल थे। उसके बीचोंबीच पर्वतमाला चली गई थी। उसकी ऊँची चोटियाँ तो हिमाच्छादित थी पर अञ्चल भाग बहुत रमणीक था। यहाँ भी एक अधित्यका पर जहाज उतारा गया। यहाँ भी भोजन की पूरी सुविधा थी, फल थे, परिचित जातियो के शिकार के योग्य पशु थे।

थोड़ा-बहुत साम्य होते हुए भी दोनो ग्रहों मे बडा अन्तर था। इस नये देश में जगल बहुत घने थे। वहाँ कभी सभ्यता का प्रसार हुआ

था, जगल काट डाले गए थे, जो छोड भी दिए गए थे उन पर नियन्त्रण था। नियम न हट जाने पर भी पूर्ववत् अवस्था नही आ सकती थी। मकानों और बागो मे भी पेड़ निकल आए थे परन्तु बीच मे खाली जगह मिलती ही थी। यहाँ जगल स्वच्छन्द था। उसने कुल्हाड़ी की चोट नही सही थी। पुराने ग्रह के बहुत से हिंस्र पशु मार डाले गए थे। जो बच गए थे या जो पालतू से जगली हो गए थे उनकी सख्या कम थी और वह अपेक्षया छोटे भी थे। यहाँ का पशु-जगत निर्बाध था। उसका मनुष्य से या मनुष्य-जैसे किसी प्राणी से पाला पड़ा ही न था। हमारे यात्रियो को देखकर यहाँ के पशु घबराते न थे, अपने कामो मे लगे रहते थे। यह इस बात का प्रमाण था कि उन्होने अब तक शिकारियो के आक्रमण को नही जाना था।

साधारण परिचित जातियों के पशु जैसे हिरन, महिष, बन्दर, सूअर तो थे ही, बहुत से ऐसे जीव थे जिनका जवाब पृथ्वी पर नही मिलता। चमगादड़ यहाँ भी होते है पर वहाँ ऐसा चमगादड़ था जिसके पंखों का फैलाव २० फुट से अधिक जाता था। शरीर इतना पुष्ट था कि अच्छे बड़े गधे को उठा ले जा सकता था। गिद्ध का आकार शुतुर्मुर्ग से दूना और फिर शुतुर्मुर्ग उड़ नही सकता। गिद्ध उडता था। वहाँ के कछुओं को देखकर उस पुराणोक्त कूर्म की स्मृति हो आती है जिसके पीठ पर मन्दराचल रखकर समुद्र मथा गया था। तीन-तीन, चार-चार फुट की तितलियाँ होती थी।

इन जीवो को देखकर आश्चर्य भले ही हो फिर भी इनको बिल्कुल अदृष्टपूर्व नही कह सकते। पर यहाँ तो ऐसे भी पशु थे जिनको देखकर यह सन्देह होने लगता था कि कही यह सब स्वप्न तो नही है। कभी ऐसे प्राणी पृथिवी पर भी थे। उनमे से कुछ की हड्डियाँ अब भी मिलती है परन्तु उनको नष्ट हुए कई लाख वर्ष हो गए। आज सरीसृप मे सबसे

बलवान् अजगर और मगर है, कभी डाइनोसार होता था जो बड़े से बड़े मगर को बगल मे दबाकर उसी प्रकार छलाँगे भर सकता था जैसे बालि रावण को लेकर घूमा करता था। टेरोडेक्टाइल चिड़िया थी पर उसे दाँत थे। रमेशचन्द्र प्राणिशास्त्र के पडित थे। उन्होंने यह सब पढा था। प्रसिद्ध कौतुकागारो मे इनकी अस्थियाँ देख आए थे। पर यहाँ तो वह लाखों वर्ष पुराना काल फिर लौट आया था। ऐसे बृहत्काय जीव थे जिनकी छाया के नीचे छोटी-बडी सभाएँ हो सकती है। मस्तोदन का बच्चा हाथी से छोटा न था। एक छ पॉव का पशु था, शेर जैसा मुँह पर नाक पर छोटा-सा सीग। उसके दोनों कधो पर सिह के केसर-जैसे लम्बे बाल थे। दूर से पंखो का भ्रम हो सकता था। ऐसा प्रतीत होता था कि इसको देख कर ही हमारे पुराणो मे शरभ का वर्णन किया गया है।

जहाँ इतने और ऐसे जीव हो, वहाँ शान्ति कहाँ। दिन भर हत्या का बाजार गर्म रहता था। रात तो और भी भयानक होती थी। कही इधर गरज, कही उधर चिग्घाड़, कही किसी तीसरी ओर आर्त की चीख, सोना कठिन था। इन लोगों का जहाज जहाँ उतरा था वहाँ कुछ दूर तक पेड़ न थे, अन्तकारण्य के अनुभव ने इनको यह सिखाया था। इसलिए यह लोग इन पशुओ के विहार और आखेट्-क्षेत्र के बाहर थे। फिर भी रक्षा की दृष्टि से जहाज के चारों ओर बिजली का हल्का सा जाल हर समय बिछा रहता था।

आज से कई लाख वर्ष पहिले की पृथिवी के अध्ययन की अटूट सामग्री बिखरी पड़ी थी। इन लोगों ने बहुत से फोटो लिये, कुछ खाल और अंडे रख लिये। सबसे बड़ी चीज तो यह अपने साथ ले जा रहे थे वह कुत्ते का एक जोड़ा था। अद्वैत ने उसे गिद्ध से बचाया था। उसे कुत्ता इसलिए कहा जाता है कि कोई दूसरा उपयुक्त नाम समझ मे नही आता।

मुखाकृति कुत्ते से कुछ-कुछ जरूर मिलती थी पर टाँगे छः थी और पूँछ दो। न जाने क्यों इस ग्रह पर कई पशुओ के छ टाँगे थी। वह इन लोगों से बहुत जल्दी हिल गया। इनका नाम विभीषण और सरमा रक्खा गया। यह नामकरण स्पष्ट ही पडित जी ने किया था। पूर्ण वयस्क होने पर इस जाति का कुत्ता भालू के बराबर होता है।

इस ग्रह का भविष्य क्या है, इस सम्बन्ध मे इन लोगो में बहुधा तर्क-वितर्क होता रहता था। कोई बाहर से आकर यहाँ सभ्यता फैलायेगा या यहाँ किसी ऐसे उन्नतिशील प्राणी का विकास होगा, यह नही कहा जा सकता था पर यह विश्वास नही होता था कि इतना उर्वर और रत्नगर्भ भूभाग सदा जगली जीवो की सम्पत्ति बना रहेगा।

इस ओर की पर्याप्त सैर करने के बाद यह लोग पर्वतमाला की दूसरी ओर उतरे। उधर भी जहाज उतारने के योग्य जगह मिल गयी। जगल उधर भी था, वही पशु-पक्षी भी थे परन्तु जगल भी झीना था, पशु भी कम थे।

पहाड की एक शाखा कुछ दूर तक चली गयी थी। उसमें सूखी चट्टाने अधिक थी, वृक्ष बहुत कम। सामने से उसमे गुफाओ के द्वार देख पड़ते थे। सम्भवतः यह कभी ज्वालामुखी विस्फोट से बने होंगे। गुफाओं से कुछ दूर तक कोरी चट्टाने थी, जगल न था।

दूसरे दिन यह लोग उधर सैर करने के उद्देश्य से निकले परन्तु थोड़ी ही दूर गए थे कि घोर दुर्गन्ध आयी। जैसे बहुत सा सड़ा मास कही निकट में ही पड़ा हो। नाक दबाकर किसी प्रकार आगे बढ़े। जहाँ जंगल समाप्त होता था वहाँ बहुत दूर तक लम्बा गड्ढा था। निश्चय ही यह गड्ढा मनुष्य की कारीगरी था। उसमे वृक्षों की नुकीली खूँटियाँ गडी हुई थी। उन पर सैंकडो पशुओ के लोथड़े लटक रहे थे। बात स्पष्ट थी। गड्ढा

इसलिए खोदा गया था कि जगल के पशु चट्टान की ओर न बढ सके। यदि कोई आगे आ ही जाय तो वह गड्ढे मे गिर जाय और उसका शरीर लकडी की इन तीखी बरछियो से छिद जाय।

यह सूझ किसी पशु की नही हो सकती। या तो यहाँ मनुष्य या उसके समान ही कोई दूसरा बुद्धिशील प्राणी रहता होगा। परन्तु कहाँ? स्वभावतः गुफाओ की ओर खयाल दौडा। ध्यान से देखने से विचार की पुष्टि हुई। भले ही उनको प्रकृति ने बनाया हो परन्तु उनके मुँह किसी औजार से छील-छालकर ठीक किये गये थे और उनमे द्वारो की जगह लकडी के पल्ले भिडे हुए थे।

यह लोग अजनवियो के साथ न जाने कैसा सलूक करते हों, इसलिए सावधान तो रहना ही चाहिए। यह लोग सतर्क होकर आगे बढे। पास जाते-जाते सौ-डेढ़ सौ व्यक्ति निकल आये। रग ताँबे जैसा, शरीर पुष्ट, हाथ और पाँव मे छः-छः अँगुलियाँ, देह आगे से कुछ झुका हुआ था, इसलिए आजानुबाहु से लगते थे। सारा बदन नगा था पर कमर में पत्तियो का कौपीन-सा पड़ा था। गले और बाल फूलो से सँवारे गए थे। शरभ की भाँति इनके कन्धों पर भी बालो की पंक्ति थी। प्रायः सब के हाथों में धनुष-बाण था, कुछ भारी गदा या मुद्गर से सज्जित थे।

पहिले तो वह इनको देखकर सहमे, फिर तीर सँभाले। पंडित ने अपनी तर्जनी उठाकर उनको जोर से डाँटा। भाषा तो वह क्या समझे होगे पर स्वर और मुद्रा का अर्थ समझ गये। रुक गये। फिर पंडित ने अपनी पिस्तौल सामने के एक छोटे पेड पर चलायी। नली मे से आग निकली, पेड़ गिर गया। यह बिजली की पिस्तौल न थी, ऐसे अवसरों के लिए ही रक्खी गई थी। बस इतना पर्य्याप्त था। सब के सब इन लोगो के चरणो मे गिर पड़े।

जो प्रश्न इन लोगों के चित्त में इतने दिनों से खेल रहा था उसका

उत्तर मिल गया। इस ग्रह के विजेता, भावी शासक, का जन्म हो गया था। यह जाति कही अन्यत्र से आयी या यही उत्पन्न हुई, यह नही कहा जा सकता पर यह निश्चय था कि भविष्य उसके हाथ में होगा। जो लोग आज गुफाओ मे रहते है, फूल-पत्ती पहिनते हैं, वह पशु कोटि के ऊपर उठ गए हैं, संस्कृति का बीज उनमें वपन हो गया है, इसका एक दिन विस्तार होकर रहेगा। जिन लोगो ने लकडी के खूंटों और तीरो के बल पर भयानक पशुओं की बाढ रोकी है उनकी बाढ को रोकने मे कोई समर्थ नही हो सकता। और यह प्रसन्नता की बात है कि दो-एक विशेषताओं के होते हुए भी वह मनुष्य है।

अब यहाँ कुछ और देखने को न था परन्तु पडित ने आग्रह किया कि हमारा कर्त्तव्य है कि इन लोगों को सभ्यता के पथ पर आगे बढने में थोडी सी सहायता दे। यह राय सब को पसन्द आयी। चट्टान में चकमक बहुत था। इनको आग जलाना सिखाया गया। आग पर भुने मास को खाने में तो पहिले थोड़ी सी आनाकानी हुई परन्तु युद्ध और रक्षा मे आग का किस प्रकार उपयोग हो सकता है, यह बात बहुत शीघ्र समझ में आ गयी। सूर्य्य की पूजा तो वह लोग पहिले भी करते थे। इन्होंने उनको हवन करना सिखलाया, दो-एक टूटे-फूटे मन्त्र बतला दिए। वह लोग अपने मुर्दों को खाते थे। अब उनका नर-मांस खाना बन्द हो गया और शवदाह होने लगा।

लगभग एक महीने यह लोग वहाँ रहे। उन लोगों ने इनको बस जाने का निमन्त्रण दिया, गृहस्थी चलाने को पत्नियाँ भेंट करनी चाही, पर इन्होने अपने को इन बातों से दूर रक्खा। भोजनादि भी उनके साथ नही करते थे ताकि उनके चित्त पर यह विश्वास जमा रहे कि यह स्वर्ग से देवगण उतरे हैं और हमारे हित के लिए हमको सदुपदेश देने आये हैं।

इनके जहाज के आकाश में उड जाने ने इस भावना को और भी पुष्ट कर दिया होगा। सम्भवतः सहस्रों वर्ष बाद भी उन देवों की पूजा होती रहेगी जिन्होंने स्वर्ग से उतरकर आग के रूप मे सब उन्नति की कुंजी इस जाति को सौप दी। पडित ने इनको यह भी सिखाया कि तुम अपने को मनुष्य कहा करो। पता नही यह शिक्षा कब तक याद रहेगी और उस जाति के भविष्य के विद्वान् इस शब्द की क्या व्याख्या करेंगे।

पहिले ग्रह में एक जाति के जीवन की संध्या थी, यहाँ उसके विपरीत एक जाति के जीवन का प्रभात था. वहाँ सभ्यता और सस्कृति का दम टूट रहा था और यहाँ उनका समुदय हो रहा था।

विश्व मे ऐसा होता ही रहता है, यह बात अनुमान से सिद्ध होती है। पर इन लोगो को दोनों दृश्य अपनी आँखों देखने का सुयोग मिला। ऐसा अनुभव किसी अन्य को कदाचित् ही कभी हुआ होगा।

जाने के पहिले इस ग्रह का नाम प्रकाश रक्खा गया।

सामूहिक आत्मघात

अन्धकार मे निराशा के जो बादल उमड आये थे प्रकाश मे पहुँचकर वह स्वतः छिन्न हो गए। इस ग्रह के नवमानव के भावी अभ्युदय की कल्पना ने इन लोगों के चित्त मे कुतूहल के साथ-साथ विस्मय और आशा की गुदगुदी उत्पन्न कर दी। बिना कारण के कार्य्य नही होता, न अभाव से भाव होता है, न सत् असत् हो सकता है। अतः जगत अनादि और निरवधि है, चेतना भी नित्य और विभु है। जो देख पड़ता है वह क्षणभगुर है. ग्रह, नक्षत्र, नीहार, सब नश्वर है, व्यक्ति, राष्ट्र, जाति, सभ्यता, संस्कृति सब का उदय और अस्त होता है, बुदबुद उठते है और विलीन हो जाते है, पर एक अथाह, अखड, सलिल है जो असीम से असीम तक फैला हुआ था, है, और रहेगा। मनुष्य अपनी अल्पज्ञता से सोचता है कि यदि हमारी वर्तमान सभ्यता का किसी प्रकार ह्रास हो गया तो विश्व मे आध्यात्मिक अन्धकार छा जायगा। यह उसका भ्रम है, झूठा गर्व है। जिस जगन्नियन्त्री शक्ति ने यह बिसात फैला रखी है वह प्रत्येक गोटी की खबर लेती है। एक को गिराती है, दूसरी को उठाती है। ज्ञान का दीपक बुझने नही पाता। गिरि, सागर मरुस्थली ही नही विशाल नभ प्रागण को पार करके उसका सन्देश पहुँचाया जाता है। बसने के योग्य भूपृष्ठ पर प्राणी आते है, प्राणियो के चित्त में ज्ञानाकुर का प्ररोह होता है। प्राणी अपने को स्वतन्त्र समझता है, परन्तु इस स्वतन्त्रता की आड़ मे महामाया उसको कठपुतली की भाँति खेलाती है। इनके चित्तो मे आकाशभ्रमण की प्रबल इच्छा उठी थी पर यह अब विदित हुआ कि करोड़ों कोस की दूरी पर उदीयमान एक

नये मानव-समाज को उन्नति-पथ दिखालाने के लिए ही इन्हे काशी से यहाँ लाया गया था। सात्विक दान, दाता और अदाता दोनों का कल्याण करता है। इन्होंने अग्निदान करके प्रकाशस्थ मानव के लिए उन्नति का द्वार खोल दिया। इनके भी ज्ञान और अनुभव की वृद्धि हुई और विचारों मे गहराई आयी, पृथिवी के ज्ञान भडार का विस्तार हुआ।

अभिजित् लाइरा तारकपुँज मे है। इस पुंज का आकार प्राचीन यूनान के लायर बाजा जैसा है। यह लोग उधर ही जा रहे थे परन्तु कुछ घटनाओ ने इनके लक्ष्य को बदल दिया। अभिजित् से बायी ओर एक तारा है जो पृथिवी से धुँधला सा दीखता है। यों पास जाने पर हमारे सूर्य्य से कम नही है। उसके साथ कम से कम एक बड़ा ग्रह है। दूर से उसके पास बहुतसे छोटे-छोटे पदार्थ मँडलाते देख पड़े। कुछ और आगे बढने पर देख पडा कि यह सैकडो आकाशयान है। इनमे अधिकतर तो ग्रह को घेरे हुए थे परन्तु उनमे से कुछ दूर-दूर पहरेदारों की भाँति उड रहे थे। सैकड़ों आकाशयान! पृथिवी पर तो अभी इनका एक यान बन पाया था। जिन लोगों के पास इतने आकाशयान है, वह उन्नति की किस चोटी पर होंगे। दो बराबर की सभ्यताओं का यह पहिला ही सामना था पर इस अवसर पर स्पष्ट ही पृथिवी का पल्ला हल्का पड रहा था।

यह लोग इसी उधेड-बुन मे थे कि पहरेवाले एक जहाज़ ने इनको देख लिया और वेग से इनकी ओर बढ़ा। इनकी सॉप-छछूंदर सी दशा थी। यदि जहाज लोटाते है तो उसका सन्देह बढेगा, निश्चय ही पीछा होगा। सम्भव है उसके अस्त्र बहुत प्रबल हों और इनको खड़े-खडे भस्म कर दे। यदि आगे बढते है तो भी कठिनाई है। यह एक, वह अनेक। इनको घेर-कर कैद किया जा सकता था। जो कुछ हो, इन्होने यह निश्चय कर लिया कि यदि जहाज पर सकट आया तो पहिले अपने निजी कागजो और नक्शो

को नष्ट कर दिया जाय ताकि शत्रु भी यह पता न लगा सके कि यह लोग कहाँ से आये हैं। यदि कोई शत्रु पृथिवी का पता पाकर वहाँ राज्य या उपनिवेश स्थापित करने पहुँच गया तो बहुत बुरा होगा।

पास आकर आगन्तुक ने प्रकाश सकेत किया। इन्होंने भी उत्तर दिया पर एक की बात दूसरे की समझ मे न आयी। तब इन्होंने दृष्टिध्वनि यन्त्र लगाया। उनके पास भी ऐसा ही यत्र था। इससे बातचीत सुकर हुई। यद्यपि कठिनाइयाँ अब भी थी। जहाँ उभयपक्ष की जीवनानुभूतियाँ एक-सी होती है, वहाँ विचार भी एक-से उठते है, तदनुकूल चित्र भी एक-से बन पाते है, पर यहाँ वह बात न थी। दो ऐसी जातियो के प्रतिनिधि मिल रहे थे जिनके अनुभवस्तर कही मिलते ही न थे। दोनो जहाजवाले पहिले तो एक दूसरे की सूरतो पर ही चौके। उनके लिए मनुष्य की आकृति नयी चीज थी, इन लोगों ने स्वप्न में भी ऐसे जीव न देखे थे जिनके चेहरे ऐसे हाथी जैसे हो जिसको सूंड की जगह थूथन हो और सिर पर दो अर्धचन्द्राकार सीग हों। उनके शरीर कंधे से पाँव तक रेशमी कुर्ते से ढँके थे, कमर सुनहरी पेटी से कसी थी।

स्वभावत· पहिले इनका परिचय और आने का उद्देश्य पूछा गया। उत्तर मे इन्होंने इतना ही कहा कि हम बहुत दूर के रहनेवाले हैं। यहाँ तो ज्ञानसंचय करने और यदि सभव हो तो आकाश के इस प्रदेश के निवासियो से मैत्री और व्यापार सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से आए हैं। पहरेवालो ने सूचित किया कि आपलोग बुरे अवसर पर आये। यहाँ महायुद्ध छिड गया है, घटे दो घटे के भीतर लड़ाई आरम्भ होनेवाली है। आपका भला इसी में है कि न केवल तटस्थ रहे वरन् युद्धस्थल से दूर रहें। हमलोग भी दूर-दूर तक जाते है, कई ग्रहों पर हमारे उपनिवेश भी हैं। सम्भव है हमारी पुस्तकों में आपके ग्रह और सूर्य्य का भी उल्लेख हो।

पर इस समय इन बातों के लिए अवकाश नही है। हम एक बार इन दुष्टों का मान-मर्दन कर ले फिर आपसे बात करेंगे। आशा है आप हमारा आतिथ्य ग्रहण करके प्रसन्न होगे। हम आपको अभी से अपने समाज की ओर से निमन्त्रण देते है।

इतना कहकर वह चला गया। यह न ज्ञात हो सका कि कौन लोग लड रहे है और क्यो। इतना और पता चल सका कि उनके कान नही होते और वह लोग सुन भी नही पाते। इसका कारण यह हो सकता है कि उनके ग्रह की हवा पतली हो और शब्द की लहरों का वहन न कर सकती हो। पर उनकी आँखे बहुत तेज थी। अँधेरे मे भी देख सकती थी। बस इतना ही जाना जा सका। फिर भी उनके यहाँ पुस्तके थी, विज्ञान था, किसी न किसी प्रकार का धर्म भी होगा, राज-व्यवस्था भी होगी। इस सारी जिज्ञासा का संवरण युद्ध की समाप्ति तक करना था। यह भी आशा रखनी थी कि जिस पक्ष से ईषत् परिचय हो गया है, उसकी विजय होगी।

थोडी देर मे युद्ध आरम्भ हुआ। पृथिवी पर वायुयानो से काम लिया जाता है, भाँति-भाँति के परमाणु बम छूटते है, तोपे आग उगलती है। इसलिए हम विस्फोटों से परिचित है, समराग्नि के उच्छृंखल ताण्डव से अभ्यस्त है। परन्तु आकाशयानों के युद्ध तक जाने मे कल्पना के भी पर जलते है। लाखो कोस के युद्धस्थल मे आग बरस रही थी। दोनों ओर के बेड़े एक दूसरे को घेरने और ध्वस्त करने को बढ़ते थे, फिर पीछे हटते थे। बिना बादल के बिजली कौध रही थी। वस्तुतः आकाश में पूर्णतया शून्य तो है नही, रजकण सर्वत्र फैले हुए है। यह कण प्रदीप्त हो रहे थे, इनकी फुलझड़ियाँ छूट रही थी, कितनों के परमाणु टूट रहे थे, नये परमाणु बन रहे थे, नयी गैसों की सृष्टि हो रही थी। जहाँ थोडी देर पहिले गर्वीला जहाज़ था, वहाँ या तो भस्म की एक चुटकी होती थी

या धातुओ का जला टूटा ढेर। यदि लडाई किमी ग्रह के भूतल से ऊपर होती तो जहाजो के अवशेष नीचे गिर जाते परन्तु खुले ख प्रदेश मे गुरुत्व का अभाव है। यह लाखो वर्ष तक यो ही निश्चल पडे रहेंगे। यदि उनके सवारों के शरीर बच गए होगे तो रासायनिक क्रिया के अभाव में न वह गलेंगे, न सडेगे, न सूखेगे। यो ही वह भी अन्तरिक्ष में जहाँ के तहाँ पडे रह जायँगे। और यदि कोई जीवित व्यक्ति रह गया तो उसका क्या होगा? यदि उसके शरीर के भीतर की सारी क्रियाएँ चलती रही तो वह तो तत्काल ही मर जायगा क्योकि वहाँ भोजन-पानी की तो बात ही क्या साँस लेने को हवा भी नही है। परन्तु कही यह न होता हो कि ऐसी अवस्था मे शरीर की सारी क्रिया स्तब्ध हो जाती हो, प्राण अपने को खीचकर मूर्धा के किसी प्रदेश-विशेष मे छिप जाता हो। तब तो वह व्यक्ति अमर-सा हो जायगा। यह अमरत्व उसके किसी काम न आयेगा पर उसका शरीर अधर मे त्रिशकु की भाँति लटकता रहेगा और जबतक किसी दूसरे पिड के आकर्षण-क्षेत्र मे न पहुँचेगा तब तक इसी समाहितप्राय अवस्था में रहेगा।

यह लोग युद्ध के उसी अश को देख सकते थे जो आकाश मे हो रहा था। ग्रह पर क्या बीत रही थी उसका कुछ अनुमान ही हो सकता था। उसका कलेवर तो आग की लपटों से आच्छादित हो रहा था। ऐसा युद्ध कब तक चल सकता है, शीघ्र ही एक न एक पक्ष हथियार डाल देगा, यह लोग ऐसा सोच ही रहे थे कि भयानक धड़ाका हुआ। आकाश में शब्द की गति नही होती इसलिए कुछ सुन तो पड़ा नही किन्तु ग्रह से उठकर कोटि-कोटि अग्निजिह्वाएँ उसके चारों ओर के नभस्तल से लिपट गईं। बिजली का सागर प्रबल तरंगों से मथ गया। इनका जहाज़ बड़े वेग से पीछे हटा परन्तु फिर भी जैसे झझावात छोटी नौका को हिलाता है उसी

प्रकार झकोले खाने लगा। बिजली के सारे यन्त्र अस्त-व्यस्त हो गए, ताप असह्य हो उठा। जहाँ एक ग्रह था वहाँ सहस्रो ज्योतिर्बिन्दु बिखर उठे। सूर्य्य प्रत्यक्ष रूप से हिल उठा। पीछे दूरबीन और गणना ने बताया कि वह अपने स्थान से सदा के लिए हट गया। आकाशयानो की राख भी न जाने कहाँ चली गयी।

धीरे-धीरे वह खभाग जहाँ कभी वह अभागा ग्रह था ठंडा हुआ, अगारे बुझ गए परन्तु लाखो कोस तक तप्त बालुका के कणो जैसा प्रकाश अब भी छिटका हुआ है, उन्मत्त विद्युत् अब भी शान्त नही हुई है।

दुर्घटना का रहस्य समझना कठिन न था। आकाशयान परमाणु-शक्ति से चलते थे। यों तो कोई भी परमाणु काम दे सकता है परन्तु यूरेनियम के परमाणुओ के विघटन मे सुविधा होती है, यह तत्व भूगर्भ में मिलता है, तारो और दूसरे ग्रहों मे भी प्रचुर मात्रा मे है। इसमे विशेषता यह है कि इसके परमाणु प्रकृत्या टूटते रहते है। महायुद्ध मे जो अन्धाधुन्ध बम-वर्षा हुई उसके प्रहार से ग्रह के भीतर का यूरेनियम भडार क्षुब्ध हो उठा। जो काम प्रकृति मे धीरे-धीरे होता है और प्रयोगशाला मे नियन्त्रण के साथ किया जाता है, वह सहसा बड़े परिमाण पर हो उठा। यूरेनियम की खान में विस्फोट हुए, परमाणु टूट पडे, क्षण भर मे ग्रह के टुकड़े-टुकडे हो गए। लडनेवाले सदा के लिए सो गए, युद्ध स्वतः समाप्त हो गया। ग्रह के न रहने से सूर्य्य पर जो उसका आकर्षण था उसका अभाव हो गया, इसलिए वह अपने पुराने मार्ग से हट गया।

एक समुन्नत जाति की सामूहिक आत्महत्या का नाटक समाप्त हुआ। अन्वेषण और खोज की प्रवृत्ति बुद्धि का भूषण है, विज्ञान के सहारे प्राणी प्रकृति के गूढतम रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर लेता है, सृष्टि, पालन और संहार की शक्तियो को अपने अधिकार मे लाता है परन्तु शक्ति का

स्वामी होना ही पर्य्याप्त नही है, उसका सदुपयोग भी होना चाहिए। यदि बुद्धि का परिष्कार न हुआ, यदि वह राग, द्वेष और अहभाव के ऊपर न उठायी गयी, यदि अह और त्व के पर्दे के पीछे उस अच्छेद्य, अद्वय तत्व के साथ तादात्म्य भाव उत्पन्न न हुआ जो नानात्व को एकत्व के सूत्र में बाँधे हुए है, तो शक्ति अभिशाप हो जायगी। बालक को तलवार देना घातक है।

आज मनुष्य भी इन शक्तियो से खेलने लगा है पर उसने भी बुद्धि का परिष्कार नही किया। भौतिकता के नशे मे वह अध्यात्म तत्व पर ठोकर मारता है। क्या वह भी एक दिन प्रलय का आह्वान करनेवाला है? क्या प्रकृति की अवहेलना करके पृथिवी अपने बच्चो के हाथो ही नष्ट होने-वाली है?

यह प्रश्न स्वभाविक है। सभ्यता का एक प्रकार से ऐलवर्त मे अन्त हुआ, दूसरा प्रकार यहाँ देख पडा। निश्चय ही व्यष्टि और समष्टि, सभ्यता और सस्कृति, चर और अचर के जन्म के जितने विभिन्न उपाय हैं उतने ही विभिन्न उपायों से प्रकृति उनका अन्त करती है। इसका कारण क्या है: कर्म्म, नियति, अदृष्ट या शक्तियो की अन्धी अकारण गति?

जहाँ ऐसे वैराग्य लिए दार्शनिक विचार उठते थे वहाँ साथ-साथ विज्ञान-चर्चा की ओर भी चित्त का जाना स्वाभाविक था। विज्ञान के उच्च स्तर दर्शन की भूमिकाओ से टकराते है। कच्चा विज्ञान भले ही दर्शन की हँसी उडाता देख पड़े परन्तु गम्भीर विज्ञान दर्शन का पुष्टतम स्तम्भ है।

परमाणु और उसकी गुप्त शक्ति के विषय मे ही बातचीत होती थी। वेदों मे अणोरणीयान्, अणु से भी छोटा, प्रयोग आया है पर इस प्रसंग म अणु केवल बहुत छोटे या छोटे से छोटे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कणाद ने परमाणु, परम अणु, को पारिभाषिक शब्द का रूप दिया। क्षिति, अप्, तेज और वायु के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते है। परमाणुओं

का परिमाण बराबर होता है और वह सब के सब अखंड और अविभाज्य होते है। आधुनिक विज्ञान क्षिति आदि शब्दो का व्यवहार नही करता परन्तु उसने भी इसी परिभाषा को माना है। लगभग ६५ मौलिक पदार्थ अर्थात् तत्व है। इन्हीके विभिन्न मात्राओ मे मिलने-जुलने से जगत की सारी वस्तुएँ बनी है। यह पृथिवी मे, सूर्य्य मे, अन्य तारको मे, सर्वत्र विद्यमान है। इनमे से प्रत्येक के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते है। परमाणु किसी रासायनिक क्रिया से काटा-छाँटा नही जा सकता परन्तु कुछ उपायो से उसका विभाजन हो सकता है। हाँ, विभाजन के बाद वह तत्व ही नही रह जाता, कोई दूसरा ही तत्व बन जाता है।

इतना तो सभी पढ़े-लिखे लोग जानते है परन्तु अद्वैतकुमार जी इस विषय के विशेषज्ञ थे, उन्होने जो बाते समझायी उनसे परमाणु की शक्ति को समझने मे अधिक सहायता मिली। प्रत्येक परमाणु देखने मे एक सौर-मडल-सा लगता है। उसके केन्द्र में "कुछ" होता है। इस "कुछ" से कुछ दूरी पर दूसरा "कुछ" घूमता रहता है। दोनों ही "कुछ" परिमाण मे बहुत छोटे होते है। बहुत छोटे के लिए अणु और परमाणु शब्द तो पहले ही बँट चुके है, अतः इनको 'लव' कहना ठीक होगा। केन्द्रीय लवो मे कुछ धन विद्युन्मय होते है, कुछ मे विद्युत् का परिचय नही मिलता। इनको क्रमात् धन विद्युन्मय-लव और तटस्थ लव कह सकते है। परिधिवाले "कुछ" ऋण विद्युन्मय-लव होते है। हाइड्रोजन का परमाणु सबसे सरल होता है। उसमे केन्द्र मे एक धनविद्युन्मय-लव और बाहर एक ऋण विद्युन्मय-लव होता है। दूसरे तत्वों के परमाणुओ मे भीतरी और बाहरी लवों की सख्या अधिक होती है। यूरेनियम के केन्द्र मे ९२ धन लव और १४२ तटस्थ, तथा बहिर्भाग मे ९२ ऋण लव है। दूसरे तत्वो मे लवों की संख्या इनके बीच में होती है। हाइड्रोजन परमाणु के लवों की सख्या में

वृद्धि से दूसरे तत्वों के परमाणु बने-से प्रतीत होते है। इस धारणा की पुष्टि इस बात से भी होती है कि दूसरे तत्वो के परमाणुओं के टूटने से हाइड्रोजन निकलता है। जिस तत्व मे जितने ही अधिक लव होते है वह उतना ही अधिक अस्थिर होता है अर्थात् उसके केन्द्रस्थ धन लव निकल भागने के यत्न मे रहते है। पारस्परिक खिचाव के कारण जल्दी ऐसा नही हो पाता। हजारो वर्षो मे कही अवसर आता है फिर भी चूँकि सभी धन लव है, अतः एक दूसरे का निरन्तर विकर्षण करते रहते है और कभी-कभी एकाध लव अपने साथियो को छोड़कर परमाणु के बाहर हो जाता है। इस प्रकार परमाणु का विघटन हो जाता है। विघटन के समय परमाणु से शक्ति का प्रबल निष्क्रमण होता है। यह तो प्रकृति की बात हुई, मनुष्य इस प्राकृतिक घटना का अनुकरण करता है। साइक्लोट्रन यन्त्र मे यूरेनियम के परमाणु के केन्द्र पर विद्युत् का प्रहार किया जाता है। फलस्वरूप केन्द्र की अवस्था क्षुब्ध हो उठती है, अस्थिरता तो पहिले से थी ही, लव तो निकलना चाहते ही थे, इस प्रहार से उनको सहायता मिल जाती है, कुछ लव परमाणु के बाहर हो जाते है, यूरेनियम सीसा और दूसरे तत्वों मे बदल जाता है और इस परिवर्तन मे जो शक्ति निष्क्रान्त होती है उससे युद्धादि मे काम लिया जाता है।

यह काम बहुत सरल नही है। इन लवो के लघु परिमाण का अनुमान इस बात से हो सकता है कि लव का व्यास ·००००००००००००४ इच के बराबर होता है। एक और बहुत बड़ी कठिनाई है। विज्ञान का अनुभव है कि हम किसी भी वस्तु का स्थान या वेग ठीक-ठीक नही जान सकते। साधारण व्यवहार मे हम वेग भी नापते है और स्थान का भी निश्चय करते है परन्तु विज्ञान की दृष्टि से यह दोनो ही निर्णय अयथार्थ है, इनके साथ "लगभग" जोड़ देना चाहिए। किसी वस्तु के स्थान या वेग को जानना

तभी सम्भव होगा जब हम उसको देखें या उस पर से टकराकर ज्योति की रश्मि किसी यन्त्र पर पड़े। परन्तु किसी वस्तु पर जब शक्ति का आघात होता है तो उसकी गति बदल जाती है। इससे स्थान और वेग मे अन्तर पड़ जाता है। हमारे देखने मात्र से दृष्ट वस्तु मे गतिभेद हो जाता है। बड़े परिमाण की वस्तुओ मे इसका पता नही चलता परन्तु प्रभाव उन पर भी पड़ता है। इसलिए परमाणु के केन्द्र को निशाना बनाना बहुत सुगम नही होता। उससे छेडछाड़ करने के प्रयत्न मे ही उसकी गति बदल जाती है। निशाना चूक सकता है पर यदि केन्द्र पर चोट पहुँच गयी तो फिर बडे जोर से विघटन होता है। उसमे से निकला हुआ लव प्रति सेकण्ड ६३ हजार कोस की गति से चलता है।

लव विद्युन्मय हो या तटस्थ, पर इस शब्द का अर्थ है टुकड़ा। परमाणु के भीतर जो लव है, उनको किसका टुकड़ा कहे ? सिवाय विद्युत् के और तो कुछ मिलता नही। इसलिए उनको विद्युल्लव, बिजली के लव, कहना स्यात् ठीक हो। पर बिजली तो एक प्रकार की लहर, तरग है। लहर किसमें है ? तरगी कौन है ? शून्य मे तरंगे उठ रही है ? और फिर विद्वानों का यह भी खयाल है कि आकाश मे ऋण विद्युत् के लवों का अथाह, अपार सागर है। उस सागर मे कही-कही छिद्र, रिक्त स्थान है, वही हमको धन विद्युत् के लव जैसे प्रतीत होते है। शून्य में तरगे और तरंगों मे जगह-जगह छिद्र।

बात आरम्भ हुई परमाणु के विघटन के भयावह परिणामो से और आ लगी दर्शन के किनारे। पडित जी का कहना था कि यह सर्वथा स्वाभाविक है। सभी मौलिक विषयों का समन्वय दर्शन मे होता है। विज्ञान का वेत्ता परमाणुओं का संघटन और विघटन अपनी आँखों देखता है। तत्व परिवर्तन जिसका रसायन के खोजी स्वप्न देखा करते है, उसके

लिए ध्रुव सत्य और व्यावहारिक प्रक्रिया है। पर वह शक्ति क्या है जो विद्युत् और प्रकाश के रूप में काम करती है? क्या उसका कोई सम्बन्ध उस शक्ति से भी है जो जीव रूप से प्राणियों मे अभिव्यक्त होती है? वह आकाश क्या है जिसमे विद्युत् की तरंगे उठती है, जिसमे ऋण विद्युल्लव फैले हुए है, जिसमे कही-कही छिद्र है? शून्य मे छिद्र का क्या अर्थ होगा?

अन्तर्द्धान

यह प्रसिद्ध है कि श्मशान मे वैराग्य उत्पन्न हो उठता है। हमारे आकाशयात्रियो ने अभिजित् के समीप जो प्रलयस्वरूप दृश्य देखा था उसका प्रभाव चित्त पर से जल्दी मिटता न था। घूम-फिरकर गम्भीर विषयो पर ही गोष्ठियाँ होती थी। अब इन लोगों ने आकाश मे दूर बढने का सकल्प छोड़ दिया था और सप्तर्षि की ओर यान को मोड़ दिया था। यह विचार था कि पहिले अरुन्धती या वशिष्ठ के पास रुकने का प्रयत्न किया जाय, फिर मरीचि पर यात्रा समाप्त की जाय।

परमाणुओ के वाद आकाश और दिक् का कई दिनो तक चर्चा रहा। अद्वैतकुमार ने बतलाया कि आज विज्ञान दिक् को स्थिर, अचल, तटस्थ, पदार्थ नही मानता। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बढ़ रहा है, बढ़ने के कारण उसके बिन्दु एक दूसरे से दूर हटते जाते है। उनका आपसी आकर्षण कम होता जा रहा है। गणना से विदित होता है कि विश्व का व्यास लगभग १ करोड कोस प्रतिवर्ष बढ रहा है। उसकी उपमा कुछ-कुछ फुटबाल से दी जा सकती है। ज्यों-ज्यों गेंद मे हवा भरी जाती है वह फूलता है और उस पर के सभी बिन्दु एक दूसरे से दूर हटते प्रतीत होते है। आकाश में यह बात प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। तारों में अपनी-अपनी पृथक् गतियाँ तो है ही परन्तु दिक् के फैलाव से उत्पन्न एक दूसरे से विलगाव की गति भी सब में है। ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती है उनके प्रकाश की यात्रा की लम्बाई बढ़ती है और उसका रंग लाल होता जाता है। उनका तापमान भी कम होता जाता है। एक दिन ऐसा आयेगा जब

विस्तार का अन्त होगा। फिर विपरीत शक्ति काम करेगी, गेद की हवा निकलने जैसी अवस्था होगी। सकोच आरम्भ होगा, तारे पास आने लगेगे, उनका रग बैंगनी होने लगेगा। आकर्षण मे वृद्धि होगी, तापमान बढेगा, सकोच की चरमावस्था तक पहुँचते-पहुँचते बडे पिंड टूट जायँगे। केवल परमाणु रह जायँगे और परमाणु भी सम्भवतः हाइड्रोजन और कुछ अन्य तरल तत्वों के। पुराने दार्शनिक शब्दो मे एकमात्र सलिल रह जायगा। इस प्रकार सकोच और विकास का नाटक निरन्तर होता रहता है।

दिक् किसी क्षण-विशेष मे सर्वत्र एकरस भी नही है। विज्ञान कहता है कि वह चापाकृति है, धनुष की भाँति टेढ़ा है पर तमाशा यह है कि प्रत्येक बिन्दु पर उसका टेढ़ापन भिन्न है। 'टेढ़ापन' और 'चापाकृति' का प्रयोग विज्ञान मे लाक्षणिक अर्थ मे होता है। जिस जगह यूक्लिड द्वारा उपज्ञात ज्यामिति के सिद्धान्त लागू न होते हो उसे चापाकृति कहते है। उदाहरण के लिए भूतल चापाकृति है। इस पर किन्ही तीन नगरो के बीच रेखाएँ खीचकर त्रिकोण बनाइये, उसके कोणों का जोड़ कभी दो ऋजु कोणों के बराबर अर्थात् १८० अश न होगा जो ज्यामिति के अनुसार त्रिकोण का अचूक लक्षण है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ दिक् टेढ़ेपन को प्रभावित करता है। ऐसी कोई वस्तु नही जो गतिशील न हो, जो निरन्तर प्रकम्पित न हो, और गति, कम्पन, से दिक् की आकृति बदलती है। सच पूछा जाय तो हमको दिक् की अनुभूति गति के द्वारा ही होती है।

यह तो विज्ञान की बात हुई। पडित जी ने बतलाया कि दर्शन इसी बात को दूसरे प्रकार से समझाता है। सृष्टि के आरम्भ मे जीव को अपने वास्तविक रूप को जानने की जो उत्कट जिज्ञासा थी वह पूरी न होती थी। इससे उसमें बेचैनी थी, चंचलता थी। इस चंचलता का अनुभव उसको क्षोभ, गति, के रूप में हुआ। इसी क्षोभ को शब्द कहते है। अन्तःकरण का

स्वभाव है हेतु ढूँढना। उसने इस गति, शब्द, के आश्रय की खोज की। कोई वास्तविक आश्रय कही बाहर तो था नही, अनुभूति के लिए जिस आधार की कल्पना की गयी, वही दिक्, आकाश है। यह काल्पनिक पदार्थ पहिला भौतिक पदार्थ हुआ। वस्तुतः वह गति से अभिन्न है।

श्मशान से ज्यो-ज्यो दूर होते है, वैराग्य भी कम होता है। इन लोगो की भी यही अवस्था हुई। सुन्दर दृश्यो ने चित्त को खीचा, शास्त्रचिन्तन से विरति हुई। अहिमडल के घेरे मे शिशुमार के सातो तारे जगमगा रहे थे। ध्रुव स्वतः बहुत बडा तारा भले ही न हो परन्तु भारत मे उसके सम्बन्ध मे जो कथाएँ प्रचलित है, उन्होने उसको अधिक रोचक बना दिया था। दाहिनी ओर दूर से विश्वामित्र के दर्शन हो रहे थे। सामने वह सप्तर्षि-मडल था जिसको लक्ष्य करके यह लोग पृथिवी से चले थे। पृथिवी की धुरी का एक सिरा ध्रुव के प्रायः सीध मे पड़ता है इसलिए दैनिक अक्षभ्रमण के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुव अचल है और सप्तर्षि आदि तारे उसकी प्रतिदिन परिक्रमा करते है। यह दृश्य पृथिवी पर से ही देख पडता है। इसमे कोई वास्तविकता तो है नही। पृथिवी से दूर निकल जाने पर ऐसी प्रतीति नही होती। परन्तु इस काल्पनिक परिक्रमा के अभाव मे भी आकाश का यह प्रदेश बहुत सुन्दर है।

जहाज वशिष्ठ के पास पहुँचा। सौभाग्य से उसके पास कई ग्रह थे। सभी आकर्षक प्रतीत होते थे। आखिर एक पर यह लोग उतरे। एक नदी के किनारे सुरक्षित स्थान देखकर डेरा डाल दिया गया। भोजनादि से निवृत्त होकर सैर करने का विचार हुआ।

जिस जगह यह लोग उतरे थे वह चारों ओर से खुली हुई थी। वृक्ष थे पर कुछ दूर पर। चिड़ियाँ इधर-उधर उड रही थी पर और कोई बड़ा जीव कही देख नही पड़ता था। पर एक विचित्र बात थी। इन लोगो को

ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हमको कोई देख रहा है। देखनेवाला हमारे पास है, हमसे ऊँचा है, ऐसा तो लगता था पर किधर है, कहाँ है, यह कुछ ठीक समझ मे नही आता था। एक और बात होती थी। वशिष्ठ चमक रहा था। कभी-कभी उसके प्रकाश मे कुछ धुँधलापन-सा आ जाता था जैसे धुएँ जैसी कोई वस्तु बीच मे आ गयी हो पर उस धुँधलेपन में से छनकर प्रकाश आ जाता था। यह चलते थे तब भी ऐसा बराबर लग रहा था कि इनकी गतिविधि को कोई बराबर देख रहा हो।

विचित्र दशा थी। यह लोग सहमे हुए थे। भय करना स्वाभाविक भी था पर सिवाय आगे बढने के कोई चारा भी नही था। इन्होने शस्त्र रख लिये थे पर यह खूब समझ रहे थे कि यदि सचमुच हमारे पीछे कोई लगा है तो उस अदृश्य व्यक्ति पर हमारे हथियार विफल होगे। हाँ, डरकर बैठ रहने से भी कोई लाभ न होगा। सम्भव है हमारे आगे बढ़ने से वह प्रकट हो। मुठभेड़ का परिणाम चाहे कुछ भी हो परन्तु यह चिन्ता तो दूर हो जायगी जिसे कल्पना और भीषण बनाए दे रही थी।

कुछ दूर चलने पर बस्ती के चिह्न मिले। चिह्न भी विचित्र थे। उनको पुरानी बस्ती के अवशेष नही कहते बनता था पर यह भी कहना कठिन था कि यह वर्तमान काल की बस्ती है। कई बड़े मकान थे, बड़े कमरे थे, कमरो में बैठने का सामान था। इन चीजों के बनाने में पृथिवी की ही भाँति लकड़ी और धातुओं से काम लिया गया था। परन्तु सर्वत्र किसी अव्यक्त कमी का अनुभव हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे सब कुछ अधूरा-सा है। और फिर कोई निवासी देख नही पड़ता था।

जिस नदी के पास इनका जहाज उतरा था वह नगर में से होकर बही थी। उसके किनारे एक बाग था, बाग मे बँगला था, फौवारा था। वहाँ भी यह अधूरापन का भाव बना रहा। पेड़ों तक मे एक प्रकार की अपूर्णता-

सी लगती थी। वहाँ एक और तमाशा हुआ। नदी के किनारे की गीली मिट्टी मे पॉव के कुछ ताजे चिह्न थे। कई व्यक्ति, जिनमें स्त्रियॉ और बच्चे भी थे, उधर से गये प्रतीत होते थे। पॉव सुडौल और मनुष्यो जैसे परन्तु बडे थे। स्त्रियो के पद-चिह्न पृथिवी के लंबे से लंबे मनुष्यो के पॉव से बड़े थे। इस चीज ने कुतूहल और भय को और भी बढ़ा दिया।

यकायक इनकी दृष्टि एक सडक पर पड़ी। उधर से कुछ लोग इधर आते-से लगे। बहुत लम्बे और बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, इन्ही लोगो के पॉवों के निशान नदी के किनारे होंगे। परन्तु आकृति स्पष्ट न थी। पतली धुएँ जैसी गैस, जिसके भीतर से प्रकाश की किरणें छनकर आ जाती थी। यह भी लगता था कि जैसे यह लोग सामने से आते तो देख पडते है पर चारों ओर व्याप्त से है। वह लोग इनसे कुछ दूर पर रुके और हाथ से कुछ सकेत किया पर यह लोग कुछ समझ न पाये। फिर वह स्यात् कुछ बोले, कम से कम इनको मधुर स्वर में उच्चरित कुछ शब्द सुन तो पडे परन्तु वह भी जैसे वायु में चारों ओर फैले हों। यह फिर भी कुछ समझ न पाये। थोडी देर रुक कर वह मूर्तियॉ वही की वही अन्तर्हित हो गयी। पहेली और विषम हो गयी।

बहुत तर्क-वितर्क करने के बाद रहस्य कुछ-कुछ समझ में आया। सम्भवतः यह लोग दिक् की चतुर्थ दिशा मे विचरण करते है। हम लोग दिक् की तीन दिशाओं—दाहिने-बायें, आगे-पीछे और ऊपर-नीचे—को ही जानते है परन्तु गणित के अनुसार और भी दिशाएँ हो सकती है। यदि कोई प्राणी अपना सिर नही उठा सकता तो उसको ऊपर नीचे की दिशा का ज्ञान न होगा। उसके लिए दिक् मे दो ही दिशाएँ होंगी। यदि उसके सामने एक पेंसिल खड़ी कर दी जाय तो वह उसके नीचे के भाग की परिक्रमा कर लेगा और पेंसिल को खोखला गोलामात्र मान लेगा। यदि पेंसिल

उठा ली जाय तो उसके लिए अदृश्य हो जायगी और यदि थोड़ी दूर पर फिर रख दी जाय तो वह यही कहेगा कि वह पहिले स्थान से अन्तर्द्धान हुई और किसी सिद्धिशक्ति के द्वारा दूसरी जगह फिर से प्रकट हुई। इसी प्रकार यदि कोई वस्तु चतुर्थ दिशा मे चली जाती है तो हमारे लिये अदृश्य, अन्तर्हित, हो जाती है। तृतीय दिशा शेष दोनों दिशाओ से सर्वत्र सवद्ध है, उनके हर बिन्दु पर और हर बिन्दु के चारो ओर है। इसी प्रकार चतुर्थ दिशा हमारे चारों ओर है और उसमें जो चीज होती है, वह अपने चारों ओर प्रतीत होती है। ऐसा विदित होता है कि जिस चतुर्थ दिशा का ज्ञान मनुष्य को अभी केवल गणित के द्वारा हो रहा है उसमें यह लोग अभ्यासतः रहते है। इसी लिए बस्ती अपूर्ण-सी लगती है, उसका वह अश जो चतुर्थ दिशा मे है अदृश्य है।

आखिर वह अनुभव कैसा होता होगा? हमको अपने शरीरो तथा दूसरी वस्तुओं के उस अंश का बिल्कुल ज्ञान नही है जो चतुर्थ दिशा मे फैला हुआ है। हमारे मस्तिष्क की बनावट, हमारी इन्द्रियो का निर्माण और सर्वोपरि हमारी बुद्धि का विकास, ऐसा है कि हम तीन के अतिरिक्त किसी दिशा की कल्पना भी नही कर सकते। देवों और योगियों के अन्तर्द्धान होने की कथाओ को हँसकर टाल दिया करते थे, अब गणितज्ञो की बातों को सुनकर सिर झुका लेते है। परन्तु अनुभव मे कुछ नही आता। यह कहते है कि योगी चित्त की वृत्तियों को अन्तर्मुख करके उस विस्तृत जगत् में प्रवेश कर सकता है पर यह भी सुनी-सुनाई बात है।

यहाँ ऐसे अनुभव का बड़ा सुयोग दीखता है। सभी चतुर्थदिक्चारी योगी है और हम पर कुछ कृपालु भी प्रतीत होते है। कैसे सम्पर्क स्थापित हो? कोई काम तो था नही, जहाज़ पर लौट आए। इसी उधेड़बुन मे वह दिन गया पर कही से आशा की आभा न देख पड़ी।

दूसरे दिन फिर निरुद्देश्य निकले और पाँव उसी बाग की ओर मुड पडे। ऐसा लगा जैसे कोई शक्ति हठात् उधर ले जा रही है। नदी के किनारे बैठ गए। थोड़ी ही देर में सिर मे चक्कर सा आने लगा, साँस रुकने लगी, कंठ अवरुद्ध हो गया, सारा शरीर निश्चेष्ट और सज्ञाहीन हो गया। बड़ी घबराहट हुई। पृथिवी से इतनी दूर कहाँ आकर मृत्यु हुई। क्षण भर मे यह विकलता दूर हुई, एक तरह का अपूर्व अनुभव होने लगा। अपना शरीर प्रत्यक्ष था, पर यह नही जान पड़ता था कि स्वय उसके भीतर है या बाहर, क्योकि एक ओर तो उसके एक एक रोम की बनावट स्पष्ट हो रही थी, दूसरी ओर भीतर की रग-रग खुली पुस्तक की भाँति सामने थी। दूसरों के शरीरो का भी व्यवधान मिट गया था। जहाँ पहिले बैंगनी किरणो के आगे का पता चलता ही न था वहाँ अब न जाने कितनी रश्मियो के आघात हो रहे थे। विद्युत् की लहरियाँ भी देह को प्रकम्पित कर रही थी पर इसमे आश्चर्य की कोई बात न थी क्योकि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि परमाणुओ और अणुओ के सारे सघात टूट गए है, शरीर स्फुरणशील परमाणुओं का बना है। असख्य पिण्डो के कम्पन से उत्पन्न ध्वनि चारो ओर गूँज रही थी, और अपने शरीर तथा दूसरे पिण्डो के बीच जैसे स्पन्द-प्रतिस्पन्द की जीवित डोरियाँ लहरा रही थी।

एक जरा-सी सिहरन हुई, दृश्य बदला। मरुत्वान् की यात्रा के श्रीगणेश का समा सामने आया, फिर जैसे जल्दी-जल्दी पट परिवर्तन हो उस प्रकार भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई, द्वितीय महायुद्ध और रूस की क्राति की झलक दिखायी दी। एक झटके के साथ दूसरी दुनिया सामने आयी, इनका जहाज पृथिवी पर लौटकर आया, उसका स्वागत, फिर कई ऐसे दृश्य जिनका परिचय इनको न तो प्रत्यक्ष हुआ था न किसी पुस्तक

में वर्णन मिला था। एक बात साफ थी, यह पिछले दृश्य सभी धुँधले और न्यूनाधिक अस्पष्ट थे।

होश आ गया। यह लोग सँभलकर उठ बैठे। इनकी घड़ियाँ कह रही थीं कि इस जगह आये अभी पन्द्रह मिनट भी नही हुए थे।

इस अनुभव को समझना बहुत कठिन नहीं था। इस लोक के जो भी निवासी हो उन्होने कृपा करके इनके चित्तो को आविष्ट करके थोड़ी देर के लिए चतुर्थ दिशा की अनुभूति के योग्य कर दिया। बाहर से खीच-कर प्राण अन्तर्मुख हो गया, थोड़ा-सा अनुभव हो गया। जिसको साधारणतः काल कहते है वह भी दिक् की ही एक दिशा है। इन लोगो को थोड़ी-सी सैर इस रेखा पर भी करा दी गयी। पहिले तो इन्हे पीछे, अतीत की ओर ले गये फिर पलटाकर आगे, भविष्यत् की ओर। भविष्यत् के चित्र स्वभावत. अस्पष्ट होते। वह काल अभी अनागत है, प्राणियो के कृत्य, उनके विचार, उनकी भावनाएँ, उसका निर्माण कर रही है और तब तक करती जायँगी जब तक वह वर्तमान न बन जायगा।

जिन लोगों की कृपा से यह अपूर्व अनुभव हुआ था उनके साक्षात्कार की अधिक आशा नही थी। इन लोगों के बस की बात तो यह थी नहीं, सम्भवतः वह लोग भी अधिक सम्पर्क के इच्छुक न थे या इसके आगे जाना उनकी सामर्थ्य के भी बाहर था। अतः अब यहाँ ठहरना अनावश्यक था। उन लोगों को मूक धन्यवाद देकर मरुत्वान् आगे बढ़ा।

———

तपोवन

अभिजित से वशिष्ठ तक की लम्बी यात्रा के बाद वशिष्ठ से मरीचि तक की यात्रा बहुत जल्द पूरी हो गयी। आकाश का यह प्रागण बड़ा सम्पन्न था। मरीचि के साथ कई ग्रह थे और इनमे से कइयों के साथ उपग्रह थे। यह लोग एक ग्रह पर जो प्राय: पृथिवी के ही बराबर था उतरे। उसके नैश आकाश को दो उपग्रह सुशोभित करते थे जिनमे एक का रंग रक्तिम था। यहाँ भी यह लोग एक अच्छी सुरक्षित जगह देख-कर उतरे। पीछे पहाड़ था, जिसकी चट्टाने सगमर्मर की थी उसमे से होकर नदी निकली थी। इस दृश्य को देखते ही इन लोगो को जबलपुर के सगमर्मर के पहाड़ो की याद आ गयी। उस स्मृति से प्रभावित होकर इन लोगों ने उस पहाड़ का विन्ध्य और उस नदी का नर्मदा नाम रख दिया।

पहाड़ से लगी उपत्यका थी। फलो से लदे वृक्ष, भाँति-भाँति के फूल, पशु-पक्षी सब ने मिलकर स्थान को बड़ा रमणीक बना दिया था। एकदम समानता तो न थी, फिर भी इनमें से बहुतो को पार्थिव नामो से पुकारा जा सकता था। सुगन्ध से लदा शीतल समीर, लताओं से वेष्टित पेडो की झूमती डालियाँ, कलियों का चटकना, मकरन्द के लोभी परागरजित भ्रमरों का गूँजना, पक्षियों का कलगान—ऐसा प्रतीत होता था कि रतिनायक के सखा वसन्त की सेना ने यहीं डेरा डाल दिया है। यह लोग ग्रह के उत्तरार्द्ध में थे। उसकी भूमध्यरेखा का प्रदेश सहस्रों कोस तक हिमाच्छादित था परन्तु उत्तर, और अनुमानत: दक्षिण की ओर चिरवसन्त का राज्य था। कभी पृथ्वी पर भी ऐसा रह चुका है।

सारा वातावरण मादक था। दो-एक दिन तो उसका रस लेने मे गये। फिर कुछ और देख-भाल करने की ओर विचार गया। थोडा ध्यान से देखने से इनको यह प्रतीत होने लगा कि इस जगह भी किसी की बुद्धि ने काम किया है। कृत्रिम कुछ नही था। ऋतु प्रकृति की देन था, वृक्ष लता, ओषधि, पुष्प, पशु, पक्षी, सभी प्राकृतिक थे, हवा प्रकृति का प्रसाद थी, फिर भी ऐसा लगता था कि किसी ने प्रकृति से सक्रिय सहयोग करके उसके कामो मे चार चाँद लगाये है। किस फूल के रग के साथ किसका रंग खिलता है, किसकी गध किसको दबा देती है, ऐसी बातो का लिहाज प्रकृति कम ही करती है परन्तु यहाँ इन बातो की ओर स्पष्ट ही ध्यान दिया गया था। जो सुन्दर था वह और सुन्दर बन गया था, सोने मे सुगन्ध डाल दी गयी थी।

वशिष्ठ के पास जो अनुभव हुआ था उसके बाद यह लोग इस जगह भी किसी प्रकार के बुद्धिशील प्राणियो के अस्तित्व के लिए तैयार होकर आए थे। कुछ-कुछ ऐसी भी आशा होती थी कि वह लोग इनको क्षति न पहुँचायेगे। फिर भी क्या ठिकाना? जब तक साक्षात्कार न हो तब तक क्या कहा जा सकता था?

साक्षात्कार के कोई लक्षण न थे। छोटी-बड़ी नदियाँ मिली, प्रपात मिले, उनके तट पर एक-से-एक सुन्दर वन और प्राकृतिक वाटिकाएँ मिली। सर्वत्र प्रकृति का वैभव छलक रहा था और सर्वत्र उसके सहयोग से काम लेनेवाली किसी बुद्धि का परिचय मिल रहा था। कभी-कभी इन लोगों को ऐसा लगा कि कोई हमारे पास है। एकाध बार तो जैसे कोई प्रबल प्रेरणा करके इनको ऐसे सुन्दर दृश्यो की ओर ले गया जिनकी यह दूर से उपेक्षा करनेवाले थे। एक बार अद्वैतकुमार का पाँव एक चट्टान पर फिसला। जरा-सी देर मे सैकड़ों फुट नीचे गिरकर हड्डी, पसली चकनाचूर हो गयी

होती परन्तु ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने हाथ पकड़कर पीछे खीच लिया। यह बातें स्वत तो अच्छी थी, कुतूहल और आशा को बढ़ाती थी परन्तु साक्षात्कार की ओर एक भी पग न बढ़ा। किसी प्रकार की बस्ती का कुही कोई चिह्न नही था, न स्पष्ट या अस्फुट कोई ऐसा शब्द सुन पडता था जिसे किसी भाषा का अंग माना जा सके। चार दिन तक इधर-उधर भटकने के बाद इन लोगों ने यह समझ लिया कि अपने प्रयास से यहाँवालों का सम्पर्क कदापि प्राप्त न होगा।

पाँचवे दिन इनकी अभिलाषा पूरी हुई और वह भी ऐसे ढंग से जिसका अनुमान न था। पृथिवी पर भी परचित्तप्रवेश की ओर लोगों का ध्यान जा रहा है। कुछ लोग दूसरो के मन की बात जान लेने की विशेष योग्यता रखते है। यह कुछ तो सहज गुण है, कुछ अभ्यास से बढ़ाया जा सकता है। दूसरे के चित्त को प्रभावित करने, उसमे विशेष प्रकार के विचारो को उत्पन्न करने की कला का भी अध्ययन हो रहा है । मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओ मे इससे बहुत काम लिया जाता है और अब तो रोगो के उपचार मे भी इसके महत्व को माना जाने लगा है। चिकित्सा शास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी को इसकी पद्धति से थोडी जानकारी होनी चाहिए। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि एक दिन परचित्तज्ञान परदेहज्ञान के समान ही सरल हो जायगा। संभव है ऐसा हो परन्तु अभी तो पृथिवी पर इसका श्रीगणेश मात्र हो रहा है।

ऐसा विदित हुआ कि इस द्वीप में यह विद्या पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है। यहाँ के निवासी स्यात् वाणी के बिना ही एक दूसरे से बात करते होगे, सम्भवतः इसी लिए परस्पर अदर्शन से कोई दिक्कत नही होती।

यह लोग निराश होकर बैठे थे कि इनके चित्त मे ऐसे वाक्यो का उदय होने लगा जिनका स्रोत कोई यहाँ का निवासी ही हो सकता था। वाक्य

हिन्दी के थे पर कही-कही बीच-बीच मे क्लिष्ट संस्कृत, वह भी वैदिक शैली, की आ जाती थी। इनके मन में जो शकाएँ उठती थी उनका उत्तर आपसे आप मिल जाता था। प्रेरणा देनेवाला कहाँ था, यह नही कहा जा सकता था परन्तु उस समय इनके चारो ओर शान्त वातावरण छा गया था।

इस ग्रह के निवासी इसे तपोवन कहते है। मरीचि के ग्रहों मे और भी कई इसी प्रकार के है। तपोवन मे वह लोग ही जन्म लेते है जो पूर्व-जन्म मे उत्कृष्ट योगी रह चुके होते है। यहाँ आकर तपश्चर्य्या पूरी करके समाधि की ऊँची भूमियों मे प्रवेश किया जाता है और कैवल्य की अपरोक्ष अनुभूति होती है। ऐसे व्यक्ति बहुत से ग्रहों पर पाए जाते है। यहाँ भारत से आए हुए योगियो के सिवाय दूसरे पिडो के भी योगी है। इनका निवास सदैव दिक् की तीन दिशाओं के बाहर होता है। अत. इनका लोक साधारण प्राणियों के लिए सदा अदृश्य है।

यहाँ पर एक शंका यह उठती थी कि और लोग तो इनको नही देख सकते परन्तु यह कैसे देखते-सुनते है और इनके लिए स्वयं दृश्य बनना सम्भव है या नही। इसका उत्तर ऐसा मिला जो थोड़ा सा विचार करने से स्वयं भी सोचा जा सकता था। इन्द्रियाँ अन्त.करण की ज्ञानप्रापक शक्तियाँ हैं, उनकी गति भौतिक जगत मात्र मे है। उसको दिक् की तीन दिशाएँ नही बाँधती। अतः इन लोगों के लिए इन्द्रियों के सभी विषय गोचर है। हाँ, स्थूल पदार्थों को उनके शरीर आत्मसात् नही कर सकते। इसी लिए लोगों का यह विश्वास है कि देव और दैत्य केवल गन्ध लेते है, खाते-पीते नही। स्थूल भौतिक कण वायुमंडल में चारों ओर फैले हुए है। इनके ही पिंडीभूत होने से प्राणियों के शरीर बनते हैं। साधारण प्राकृतिक नियमों के अनुसार प्रत्येक जीव अपने काम के कणों का संग्रह करता है, परन्तु विशेष अवस्थाओं में तीव्र संकल्प के द्वारा भी उनका समुच्चय बनाया

जा सकता है। पश्चिम मे स्पिरिचुअलिज्म के सम्बन्ध मे जो प्रयोग हुए है उनसे इस बात की पुष्टि होती है। मरे हुए व्यक्ति, पारिभाषिक शब्दों में प्रेत, अपना भौतिकीकरण इसी प्रकार करते है। तपोवन के निवासी भी जब उचित समझते है तो इस मुक्ति से भौतिक, अर्थात् दृश्य, शरीर धारण कर लेते है। संकट से बचाने के लिए, जिज्ञासु को ज्ञानोपदेश देने के लिए, विज्ञान की शोध करनेवाले को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए, यह लोग विचारजगत को तो प्रेरित करते है ही परन्तु नाना स्थानो मे नाना रूपों में दृश्य शरीरो मे भी प्रकट होते है पर इनको कोई पहिचान नहीं पाता। सभी भाषाएँ कुछ मूल स्वरो से बनी है। प्रत्येक स्वर से उठी हुई तरग मस्तिष्क के प्रदेश विशेष को झंकृत करती है और चित्त में भाव विशेष को जगाती है। जो इन स्वरों को पहिचानता है उसके लिए संगीत और वाणी का विशाल जगत हथेली के फल के समान है। वह सभी भाषाएँ समझ और बोल सकता है।

इनके शरीर दिक् की तीन दिशाओं के परे तो स्थित है ही, उनकी बनावट सूक्ष्म कणो से, विद्युल्लवो से थी। ऐसे ही शरीरो को तैजस कहते है। प्रकाश की किरणों के लिए ऐसा देह पारदर्शी होता है, किरणो को विद्युल्लव रोकते नही, इसलिए न तो यह देह देख पड़ता है न इसकी छाया पड़ती है। इसका स्वरूप भी बहुत दिनों तक नही बदलता।

यह अन्तिम बात इन लोगो की समझ में न आयी। आखिर शरीर वृद्ध तो होता होगा, स्थूल न होने के कारण बाल पकने जैसा कोई परिवर्तन भले ही न देख पडे परन्तु किसी न किसी प्रकार तो जीर्णता आती ही होगी।

जगत मे जो कुछ भी है वह परिणामी है, बदलता है। कोई भी शरीर हो, क्रमशः बदलेगा, उसमें नये कण कम मिलेंगे, उसमें से पुराने कण

अधिक निकलेगे। यही बुढापा है। ऐसा वार्द्धक्य इन शरीरों को भी पकड़ता है परन्तु वहुत धीरे। कारण यह है कि यह विद्युल्लवों के बने है। विद्युल्लव प्रचड वेग से निरन्तर गतिशील रहते है। गतिमान वस्तुओ मे परिवर्तन देर से होता है। इनके प्रेरक ने बतलाया कि तुम लोग अपने जहाज मे बडे वेग से घूम रहे हो। यदि ५० वर्ष के बाद लौटो तो तुम प्राय. वैसे के वैसे रहोगे परन्तु तुम्हारे सामने के बच्चे बुड्ढे हो चले होगे। साधारण वेगो का प्रभाव इतना कम होता है कि पकड़ मे नही आता। पता तब चलता है जब प्रकाश के वेग, ९३,००० कोस प्रति सेकेंड, से थोडा-वहुत मिलता वेग हो। इस गति का दूसरा प्रभाव यह होता है कि द्रव्यमान बढ जाता है। यहाँ के शरीरो मे यह भी गुण है। जहाज पर द्रव्यमान-वृद्धि का पता यो नही चलता कि सभी वस्तुओ मे समान अनुपात से बढ़ती हुई है परन्तु सामान्य बोलचाल मे इनके दौडते जहाज पर की सुई पृथिवी पर के हाथी के बराबर है।

पर यदि एक ही समय मे पैदा हुए दो व्यक्तियों में एक बूढा और दूसरा युवा हो सकता है तब तो बडी अनवस्था हो जायगी। हम काल-सूचक शब्दों का बड़े निश्चय के साथ व्यवहार करते है पर इस निश्चय का तो आधार ही खिसक गया, फिर काल का अर्थ क्या होगा?

इसका समाधान इनके गुप्त गुरु ने जिन शब्दों में किया उन्होंने दुरूहता मे आइस्टाईन की रचनाओ को भी पीछे डाल दिया।

अद्वैतकुमार गणित के अच्छे ज्ञाता थे पर इस प्रवचन का पानी उनके भी सिर के ऊपर से निकल गया। जो कुछ समझ में आया उसका साराश यह था:

लोग निश्चयात्मक शब्दो का प्रयोग करते है, यह इस बात को सिद्ध नही करता कि निश्चय के लिए आधार है। निश्चयमयी भाषा तो दिक्

के सम्बन्ध मे भी बोली जाती है। लोग दृढतापूर्वक बतलाते है कि अमुक वस्तु इस समय अमुक जगह है। परन्तु यह तो तुम जानते हो कि ऐसा कहना ठीक नही है। मशाल को तेजी के साथ घुमाओ तो ज्योतिश्चक्र बन जाता है, यह बताना कठिन हो जाता है कि जलता सिरा ठीक कहाँ है। यह तो एक प्रकार का भ्रान्तदर्शन है परन्तु यदि किसी वस्तु को दर्शन या निरीक्षण का विषय बनाया जाय तो वह फैल-सी जाती है, फिर इतना ही कहा जा सकता है कि रुपए मे बारह आना अमुक जगह है, चार आना कही अन्यत्र। दूसरे शब्दों मे इतना ही कह सकते है कि वस्तु प्राय. अमुक स्थान पर है और उसकी गति प्राय: अमुक प्रकार और मात्रा की है।

प्रश्न—तो क्या जिस समय कोई नही देखता, उस समय स्थान और गति ठीक रहती है ? यदि ऐसा हो तो इस अनिरीक्षित अवस्था को वस्तु की सहज या प्राकृतिक अवस्था माना जा सकता है।

उत्तर—यह प्रश्न नासमझी का द्योतक है। जिस समय कोई साक्षी नही है उस समय भी वस्तु की सत्ता होती है इसका विज्ञान के पास कोई प्रमाण नही है। वस्तुओं के अतीत और भविष्यत् के सम्बन्ध मे जितनी बातें कही जाती हैं, जितने सिद्धान्त स्थापित किए जाते है वह सब वर्तमान की किसी अनुभूति को समझने के लिए कल्पित साधन है। इस समय मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई अनुभव हुआ। चित्त पूछता है क्यों? जो कारण समझ मे आता है, उसका कारण और फिर कारण का कारण, इस प्रकार विज्ञान का विस्तार होता है। सबका आधार है कोई वर्तमान अनुभूति। अनुभव चित्त की वृत्ति है, चित्त में होता है। बस चित्त की वृत्ति विशेष के आगे और जो कुछ है वह कल्पना है। सारा जगत् मनोराज्य है। यदि साक्षी, चेता ही न होगा तो अनुभव किसको होगा?

प्रश्न—पर यह तो विज्ञान नही दर्शन है?

उत्तर—यह किसने कहा कि विज्ञान को दर्शन से दूर रहना चाहिए? अस्तु, काल के निश्चयात्मक निर्णय दिक् से भी कम विश्वसनीय है।

काल वस्तुतः आभ्यन्तर तत्व है। जीव को अपने अनुभवों मे जिस परम्परा की प्रतीति होती है वह काल है। यह वह डोर है जिस पर सारी अनुभूतियाँ मणियों की भाँति पिरोयी रहती है। तुम्हारे पहिले प्रश्न का उत्तर भी इससे मिलता है। जहाँ साक्षी न होगा, वहाँ अनुभव न होंगे, अथच काल न होगा। जो वस्तु साक्षीकृत नही है वह काल के बाहर होगी परन्तु विज्ञान का क्षेत्र वही तक है जहाँ तक दिक् और काल है। इसके बाहर यदि किसी प्रकार की सत्ता है तो विज्ञान उसे नही जानता। आभ्यन्तर होने के कारण सबका काल एक-सा नही होता। अपने-अपने चित्त की अवस्था के साथ-साथ किसी के लिए काल उडता है, किसी के लिए चीटी की चाल रेंगता है।

प्रश्न—परन्तु कोई वाह्यकाल भी तो होता होगा? आखिर लोगो के पास घड़ियाँ क्यों होती है। एक ही साथ एक ही दृश्य को सैकड़ों, वरन् लाखों, कोसो से लोग देख सकते है, भूत, भविष्य, वर्तमान-जैसे शब्दो का व्यवहार करते है, इसका कुछ तो निश्चित अर्थ है ही।

उत्तर—थोड़ी दूरियों के लिए इन शब्दों का अर्थ लग जाता है परन्तु जहाँ लाखो और करोड़ों कोस की बात हो वहाँ यह शब्द भ्रामक है। तुमने एक तारे को नष्ट होते देखा था। तुम्हारे लिए वह घटना अतीत मे है। वहाँ से चली प्रकाश की किरणें कही आज पहुँच रही होगी। उन जगहों के लिए वह वर्तमान मे है और जहाँ प्रकाश की किरणे आज के बाद पहुँचेंगी वहाँ के लिए अनागत है। एक का वर्तमान दूसरे का भूत और तीसरे का भविष्यत् है। अतीत, वर्तमान और

अनागत का सम्बन्ध दृश्य से नही, प्रत्युत द्रष्टा से है। एक ही दृश्य का एक ही साथ देखा जाना भी कोई विशेष अर्थ नही रखता। प्रकाश का वेग प्रति सेकेंड ९३,००० कोस (१,८६,००० मील) है। किसी ग्रह पर एक सिरे से दूसरे तक जाने-आने मे प्रकाश को इतना कम समय लगता है कि साधारण घडियों से तो उसे नापा भी नही जा सकता। परन्तु यदि दो व्यक्ति अपनी घड़ियों को मिलाकर दो तारों के बीच मे कही बैठकर किसी घटना को देखेगे तो वह उसे कभी एक साथ नही देख सकते। उनके पास तक पहुँचने मे प्रकाश को भिन्न-भिन्न समय लगेगे। उसको देखने का समय उनकी घडियो मे पृथक्-पृथक् होगा। एक की घडी से दूसरे की घड़ी सुस्त या तेज पड जायगी। जिसने जिस समय देखा उसके लिए वही ठीक है। यह कहने से भी काम नही चलता कि दोनों ग्रहों से ठीक बीच का बिन्दु चुना जायगा, तब तो प्रकाश को दोनो ओर समान यात्रा करनी होगी। यदि तारों के द्रव्यमानो मे भेद है तो वह अपने पडोस के दिक् को भिन्न मात्राओं मे चापाकृत करेगे। अतः प्रकाश की किरणो की यात्रा फिर भी विषम हो जायगी और घड़ियाँ न मिलेगी। न तो दिक् में कोई निश्चितता है, न काल मे। जब किसी घटना का वर्णन करने में स्थान और समय--कहाँ और कब--का निर्देश करना हो तो यह बता देना चाहिए कि निरीक्षण किस जगह से हो रहा है।

प्रश्न—काल की सापेक्षता तो प्रकाश-रश्मियों की गति पर निर्भर है परन्तु स्थान मे फर्क कैसे पड़ सकता है?

उत्तर—यह तो बहुत ही सरल और अनुभवगत बात है। तुम किसी सवारी पर जा रहे हो। उस यान की दृष्टि से तुम्हारा स्थान अचल है पर बाहर से देखनेवाले के लिए प्रतिक्षण बदलता रहता है। तुम्हारे

सूर्य्य से देखने से कुछ और ही स्थान होगा और सौरमडल के बाहर से बिल्कुल दूसरा।

इस प्रकार की और बहुत-सी बातचीत हुई। जगत् का रहस्य कुछ सुलझा और उसकी पहेली की जटिलता कुछ पहिले से और कठिन हो गयी। कहाँ विज्ञान समाप्त होकर दर्शन आरम्भ होता है, कहाँ दर्शन ओर अध्यात्म का अचल मिलता है, यह कहना कठिन था। शायद एक को दूसरे से पृथक् करने का प्रयत्न ही गलत है।

अस्तु, अब इस जगह अधिक रुकने से कोई लाभ न था। इन लोगो ने तपोवन के निवासियों को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक विदा माँगी और उनसे आशीर्वाद लेकर यान खोल दिया।

———

रकासों का लोक

इतनी यात्रा के बाद अब कही और जाने की इच्छा बाकी नही थी। जी चाहता था कि घर लौटे और पृथिवीवासियों के पास तक अपना उपार्जित किया हुआ ज्ञान पहुँचाएँ। इसलिए जहाज पृथिवी की ओर मोड़ा गया। सप्तर्षिमडल से बाहर निकलते समय इनकी दाहिनी ओर पुलस्त्य पडा। तारा बड़ा है, उसके पास कई ग्रह है। कोई विशेष कारण नही था, फिर भी जी न माना, एक ग्रह पर उतर पडे। उसके साथ अपने चन्द्रमा के बराबर उपग्रह भी था।

ग्रह बड़ा था, पर बहुत ठंडा। जल था पर कम और हवा भी पृथिवी से कुछ पतली थी। जहाज से उतरकर यह लोग यों ही थोड़ी दूर टहलने निकले। कुछ ही दूर गये थे कि शोर सुन पड़ा और पास के जंगल में से निकलकर बीस-पचीस व्यक्तियों ने इन्हें घेर लिया। उनके शरीर मनुष्य जैसे ही थे, लम्बा डील-डौल, चौड़े वक्ष। सब-के-सब नगे थे और देह को रँगे हुए थे। सब के हाथों मे पेड़ों की डालियाँ थी परन्तु कुछ के पास लोहे के डंडे भी थे। जंगलियों के पास लौहदण्ड का होना आश्चर्यजनक था। यह लोग अपने बिजली के शस्त्र साथ लाना भूल गये थे, यह दिक्कत थी। भाषा समझने का तो कोई प्रश्न ही न था, संकेत से यह समझाना चाहा कि हम तुम्हारे शत्रु नही है, परन्तु जंगलियों पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह थोड़ी देर ठिठके फिर इनकी ओर बढ़े। इन लोगों को तो यही लगा कि आज यात्रा का अन्त हुआ। सारा परिश्रम व्यर्थ गया। जंगली सतर्क होकर बढ़ रहे थे क्योकि उनको इस बात का विश्वास नहीं होता था कि

यह लोग निहत्थे होगें। परन्तु संकट जैसे आया था वैसे ही टल गया। किसी ने गोली चलायी। चार-पाँच जगली गिरे, शेष चिल्लाकर भाग गये।

जिधर से बन्दूक चली थी उधर से सात-आठ व्यक्ति आ रहे थे। सूरत-शकल मे तो वह भी इन जगली लोगो से मिलते थे, वैसी ही आकृति, वैसे ही सुन्दर शरीर। उन लोगों के देह पर लुङ्गी और कुर्ते से- मिलता-जुलता रेशमी वस्त्र था और हाथ मे बन्दूके। स्त्रियो और पुरुषों का पहिनावा एक-सा था। यह स्पष्ट था कि इस अवसर पर दो करोड़ कोस दूर लोको के मनुष्यो, दो विभिन्न सभ्यताओं और सस्कृतियो, का सम्मिलन हो रहा था। दोनों ओर उत्सुकता थी, परन्तु सयत। पार्थिव मनुष्य कृतज्ञता के भार से नत थे, एतल्लोकीय मनुष्य यह भाव प्रकट नही होने देना चाहते थे कि हमने कोई उपकार किया है। भाषा न जानने की कठिनाई तो थी ही पर वह बाधक न हो सकी। इन लोगो ने अपना "दृष्टिध्वनि" यन्त्र निकाला। उन लोगों के पास भी इससे मिलता-जुलता यन्त्र था, इसलिए बातचीत जल्दी ही आरम्भ हुई।

पहले तो पृथिवीवालों ने अपना परिचय दिया। सूर्य्य और सौरमडल का चर्चा किया, पृथिवीवालों की दृष्टि में सप्तर्षिमडल का जो आदरणीय स्थान है वह बतलाया। फिर सक्षेप मे पृथिवी के इतिहास का दिग्दर्शन करके अपनी यात्रा का वर्णन किया और दस्युओं से रक्षा करने के लिए इन लोगों को धन्यवाद दिया। पृथिवी का वर्णन करते समय इस बात का भी जिक्र आया कि वहाँ भी बन्दूक जैसे शस्त्र होते है और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया कि इस लोक और पृथिवी मे इतनी समता कैसे है।

इस जाति का इतिहास भी बड़ा रोचक था। इनकी पुरानी गाथाओ से ऐसा पता चलता है कि सृष्टि के आरम्भ मे दनु नाम की एक महाभागा महिला थी। उनके शरीर से एक बड़ा अंडा निकला, उसके फूटने पर एक

पुरुष और एक स्त्री निकली। पुरुष का नाम मय, स्त्री का माया था। उन्हीकी सन्तान यह लोग हैं। अपने को यह लोग रकास कहते है।

रकास जाति ने बड़ी उन्नति की। उसमे बड़े-बड़े विद्वान हुए, जिनकी विशेष प्रवृत्ति गणित और विज्ञान की ओर थी। आरम्भ से ही यहाँ यन्त्रों के निर्माण की ओर ध्यान दिया जाने लगा। प्रयत्न यह था कि यथाशक्य अधिक-से-अधिक यन्त्र बने ताकि हमको कम-से-कम काम करना पड़े। बुद्धि का विकास इसी दिशा मे हुआ। बड़ी सफलता मिली। खेती यन्त्र करते थे, भोजन यन्त्र बनाते थे, दफ्तरों में लिखना-पढ़ना हिसाब जोड़ना यन्त्र कर लेते थे। बिगड़ने पर मरम्मत करना और ईंधन पहुँचाना, बस रकास का इतना ही काम था। धीरे-धीरे अपने ईंधन का प्रबन्ध यन्त्र स्वयं करने लगे और छोटी-छोटी मरम्मत भी करने लगे। सबकी देख-भाल के लिए एक महायन्त्र बनाया गया। उससे सभी प्रधान शक्तिशालाओं तक तार जाते थे। वह उन सबका नियन्त्रण करता था। जिस प्रकार मस्तिष्क में पतले नाड़ितन्तु होते हैं, उसी प्रकार यन्त्रो में, और विशेषतः महायन्त्र में, सहस्रों बारीक तार थे। ज्ञानेन्द्रियो और कर्मेन्द्रियो का काम इन तारों से ही होता था।

और तब एक विलक्षण घटना हुई। महायन्त्र और दूसरे यन्त्रों में चेतना ने प्रवेश किया। हम यह नही कह सकते कि चेतना की सृष्टि हुई। ऐसा लगता है कि उपयुक्त शरीर देखकर चेतना ने, जीवों ने, उन्हें अपना घर बनाया। यह बात बहुत दिनों मे समझ मे आयी। धीरे-धीरे देख पड़ा कि अब यन्त्र संकल्पपूर्वक काम करते है, रुककर सोचते है, कभी-कभी अपने चालकों की अवहेलना कर जाते हैं। महायन्त्र उनको आदेश देता रहता है। बुद्धि के प्रादुर्भाव के बाद यन्त्र अपनी बनावट को जान गये, उन वैज्ञानिक

सिद्धान्तों को जान गये जिनके अनुसार उनका संचालन होता था। अब उनको चालक की आवश्यकता न रही। स्वतंत्र हो गये।

बहुत लोगों को यह परिस्थिति बहुत पसन्द आयी। काम सारा का सारा यन्त्रों के जिम्मे रहा। रकासों को केवल भोग रह गया। बिना परिश्रम का जीवन था। यह ठीक है कि यन्त्र अब सेवक से स्वामी हो गये थे। उनकी एक-एक आज्ञा माननी पड़ती थी परन्तु आलसी जीवन को इसमें आपत्ति न थी। विज्ञान और दूसरे गम्भीर विषयों का अध्ययन बन्द हो गया। अब तो यन्त्र की ओर से लाखों की संख्या में किस्से, कहानी और कविता की पुस्तकें तैयार होती थी। बस वही पढ़ी जाती थी। दिन-रात नाच-गाने के सिवाय कोई काम न था। लड़ना-भिड़ना कब का बन्द हो चुका था। भले ही श्मशान की शान्ति हो परन्तु थी शान्ति। पुराकाल मे हमारे पूर्वज सूर्य्य अर्थात् पुलस्त्य के उपासक थे परन्तु अब तो मन्दिरों में महायन्त्र की प्रतिमा स्थापित कर दी गयी थी।

परन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिनको यह अवस्था अच्छी नहीं लगती थी। उनको इसमें रकास जाति का सवर्तोमुख ह्रास देख पड़ता था, शरीर से परिश्रम बन्द, गम्भीर विषयों का अध्ययन बन्द, केवल नाच-रंग रह गया। इसका अवश्यम्भावी परिणाम जाति का पतन होगा। जिन यन्त्रों को अपनी सहायता के लिए बनाया गया था वह आज स्वामी हो गए। अब जीवन का नियन्त्रण उनके हाथ में चला गया। यह अच्छा नहीं है। बीच बीच में ऐसा सोचनेवाले कई व्यक्ति पैदा हुए पर उनकी सुनता कौन? महायन्त्र ने उनको बेपानी के घाट मारा।

आज से लगभग २,५०० वर्ष की बात है। (यह ग्रह पुलस्त्य की परिक्रमा लगभग ९ पार्थिव मासों में करता था। अतः इसका २,५०० वर्ष हमारे १,८०५ वर्ष के बराबर हुआ) दो मित्र थे, पोलस और सकन्द।

इन लोगो के चित्त में यह बात दृढ़ता के साथ जमी कि यन्त्रों के आधिपत्य का अन्त करना ही होगा। सौभाग्य से इनकी पत्नियाँ, बेला और अम्बी, इनसे भी अधिक उत्साहवाली थी। पोलस ने पुस्तकालयों से लेकर विज्ञान की बहुत-सी पुस्तकें पढ डाली थी। कोई बतानेवाला न था। इससे कठिनाई पड़ी, फिर भी ज्ञान का बहुत संग्रह हुआ। यह लोग जगलों मे चले जाते थे। वही उन पुरानी पोथियों के आधार पर कई प्रकार के शस्त्र बनाए गए।

अकर्म्मण्यता से जी घबरा उठता है। पला हुआ पशु भी अपने, मन का काम करना चाहता है। जिसको सदा दूसरे की आज्ञा का ही पालन करना पड़ता है, वह जीने से भी ऊब जाता है। यह दशा बहुतों की हो रही थी। सबमें साहस समान रूप से नही था, फिर भी धीरे-धीरे इनसे कुछ लोग आ मिले और इनके साथियों की संख्या कई सहस्र तक पहुँची। हथियार बनाये गये, पहाड़ की गुफाओं में खाद्य सामग्री भी छिपाकर रक्खी गयी। सकन्द इस सेना के नायक हुए।

पर ऐसी कार्य्यवाही बहुत दिनों तक गुप्त नहीं रह सकती। भेद फूटा। महायन्त्र को भी विदित हुआ। उसने सावधान किया कि जो कोई विद्रोह मे सम्मिलित होगा उसका सर्वनाश कर दिया जायगा। इस धमकी की वास्तविकता को लोग खूब जानते थे। अन्न-वस्त्र, प्रकाश, यातायात, सब तो यन्त्र के हाथ मे था। उसके रुष्ट होने पर जीवन कैसे चल सकता है। बहुतों को विद्रोहियों की सूरत से चिढ़ थी। उनको ऐसा लगता था कि यह दुष्ट अपना जीवन तो नष्ट करेंगे ही, हमारी भी मिट्टी खराब करायेंगे।

रकास और महायन्त्र का महासमर छिड़ गया। सारे ही लक्षण विद्रोहियों की हार के थे। अधिकाश जनता उनके विरुद्ध थी। जिनके हृदय मे सहानुभूति थी, वह भी उसे छिपाये रहते थे, छोटे-बडे यन्त्र के रूप

मे हर घर में महायन्त्र का सिपाही और भेदिया विद्यमान था। यन्त्र के पास बुद्धि, ज्ञान और साधन का भडार था, इन लोगो मे ज्ञान और साधन की बड़ी कमी थी। एक और बात थी। इनके पास हृदय था, इसलिए दया आ जाती थी। ऐसे लोगों को भी, जो इनके विरुद्ध काम करते थे, कभी-कभी छोड देते थे। यंत्र की बुद्धि में दया, क्षमा, धर्म के लिए कोई जगह नही थी। जो काम निश्चय कर लिया उसके मार्ग में कोई बाधा नही आने पा सकती थी, इसलिए उसकी ओर से निर्मम प्रहार हो सकता था।

इन लोगों ने अपने शस्त्रों से कई यंत्र तोड़े, कई शक्तिशालाओं को बेकार कर दिया। परन्तु यह एक तोडते थे, वहाँ दो बनते थे। यंत्र ने भी कई शस्त्र बनाये। ऐसे वायुयान निकाले जिन पर कोई चालक न होता था वह इनके गुप्त अड्डों पर बम गिराते थे। सड़क पर चलते तार और बिजली के खम्भे इन पर टूटकर गिर पड़ते थे। यंत्रशालाओं मे लोहे के बड़े-बडे टुकडे छिटककर सर फोड़ देते थे। अन्न-वस्त्र मिलना कठिन था।

ऐसा युद्ध जिसमे दोनों पक्षों मे इतनी विषमता हो कब तक चलता। साहस भी साहस खो बैठता। सकन्द की सेना जर्जर हो गयी थी। परन्तु भाग्य इनके साथ था। पोलस की बुद्धि ने एक नया आविष्कार किया। पहाड़ की ऊँची चोटी पर यह यन्त्र बैठाया गया। इसमे चश्मे जैसा महाताल था। सूर्य्य की रश्मियाँ कुछ तो उष्णता देती है, कुछ रूप का दर्शन कराती हैं, कुछ रासायनिक क्रियाएँ कराती है और कुछ विद्युच्छक्ति का वहन करती है। यह ताल इन अंतिम प्रकार की रश्मियों को ही नाभिभूत करता था। जिस यन्त्र की ओर उसे फेरा गया, उसके धातुओं के परमाणुओं का विघटन हो गया। महायन्त्र इस नए शस्त्र की घातकता को समझता था। उसने अपने बचाव के कई उपाय किए। अपने चारों ओर कई दीवारे बनायी। पर उसका सारा प्रयास विफल हो गया। दूसरे यन्त्रों के

नष्ट हो जाने से वह शरीर-वियुक्त मस्तिष्क मात्र रह गया। दीवारों के बाहर क्या हो रहा है इसका उसे पता न चलता था और न वह कोई प्रतिकार कर पाता था। विद्रोहियों ने आवरक दीवारों के नीचे विस्फोटक पदार्थ रख कर उन्हे नष्ट कर दिया। उनमे से बहुत-से मारे गये। यन्त्र ने शब्दशः अग्नि की वर्षा की परन्तु दीवारो का गिरना था कि युद्ध समाप्त हो गया। यन्त्र पर किरणे गिरी, उसके कलेवर मे क्षोभ हुआ, धातुओ के परमाणु विघटित हुए और क्षण भर मे वह मुट्ठी भर राख भी न रह गया। हाँ, नष्ट होने के पहिले यन्त्र अपने अन्तिम विस्फोट से सैकड़ों को मार गया।

समर समाप्त हुआ।

उस समय विद्रोहियों मे लगभग दो सहस्र व्यक्ति बच रहे थे। शेष जनता मे से कुछ लोग जंगलों में जा छिपे थे। उन्ही के वशज वह जगली है जिन्होंने आक्रमण किया था। उनमे से कुछ लोग कभी-कभी सभ्य समाज मे आ मिलते है, शेष अभी व्रात्य है।

यत्र की जगह पुनः सूर्य्य की उपासना स्थापित हुई। पोलस के वशज आज भी हमारे पुरोहित है। सकन्द के वंशज हमारी राज्यसभा के पैतृक अध्यक्ष है। इस समय हमारी जनसंख्या लगभग पाँच सहस्र है। विवाह के बाद दम्पती को बतला दिया जाता है कि उनको कितनी सन्तान पैदा करने का अधिकार है। इस सख्या को समय-समय पर राज्यसभा निर्धारित करती है। यदि इससे अधिक बच्चे हुए तो वह मार डाले जाते है। यह बात सुनने मे क्रूर है पर इसके लिए पुष्ट कारण हैं। जिन विद्याओं को सीख-कर हमारे पूर्वजों ने भुला दिया उनका पुनः उद्धार करना सरल नही था पर हम लोग इसमें बहुत कुछ समर्थ हुए है। हाँ, एक दृढ निश्चय हमने कर लिया है। बारह वर्ष के वय मे प्रत्येक बालक-बालिका की विशेष

दीक्षा होती है। उसको जाति का इतिहास बताया जाता है और एक त्रिवृत्त मगलसूत्र गले मे पहिनाया जाता है। इस सूत्र को हाथ मे लेकर उसको यह संकल्प करना पडता है कि मै मनसा, वाचा, कर्म्मणा कभी भी ऐसे यन्त्र के बनाने में योग न दूंगा जो मनुष्य को हटाकर काम करे। यह सूत्र यावज्जीवन शरीर पर रहता है।

यह इतिहास बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद था। पृथिवीवालों को इससे बहुत कुछ सीख मिल सकती है क्योंकि यहाँ भी ऐसे ही यन्त्रों के निर्माण की ओर बुद्धि दौड़ायी जाती है जो बिना मनुष्य की देख-रेख के काम किया करे। अस्तु, फिर स्वभावतः यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि जब दोनों सभ्यताओं मे इतना सादृश्य है तो फिर और घनिष्ठ सम्बन्ध क्यो न स्थापित किया जाय? व्यापार शुरू किया जाय, यतायात का पक्का प्रबन्ध किया जाय। यह सुझाव रकासों को पसन्द नही आया। उन्होंने पूछा कि हम आपको क्या देंगे और आप हमको क्या देगे? व्यापार का आधार क्या होगा? और फिर उन्होंने यह प्रश्न किया, "आप हम सबको पृथिवी पर बसने देगे?" इस प्रश्न ने हमारे यात्रियों को असमंजस मे डाल दिया। रकास संख्या में थोड़े है परन्तु पृथिवी पर इनको कैसे रक्खा जा सकता है? इनको वहाँ स्वतंत्र विकास का अवसर कैसे दिया जा सकता है? क्या यह पार्थिवों में घुल-मिलकर अपने व्यक्तित्व को खो देना पसन्द करेगे?

इस असमंजस को वह लोग भी समझ रहे थे। उन्होंने कहा भी: आप लोग चिन्तित न हों, हम पृथिवी पर नहीं बसना चाहते पर जो प्रश्न हमने आपसे किया है उसके पीछे हमारी बहुत बड़ी समस्या है। आप हमारे उपग्रह को देखते है। आपके चन्द्रमा के सदृश है। इसके आकर्षण से हमारे समुद्रों में ज्वार-भाटा उठता है जो देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। पर

उससे बड़ी क्षति भी होती है। चढने-उतरने मे पानी नीचे के ठोस तल से रगड़ता है और ग्रह की अक्षभ्रमण गति को कम करता है। हमारा वर्ष आपकी गणना से नौ मास का है और दिन रात दो मास का। हमारी गाथाएँ बताती है कि कभी यह इसका चौथाई ही था। एक दिन दिन-रात भी नौ मास का हो जायगा। ग्रह का एक भाग झुलसता रहेगा, दूसरे मे बर्फ से भी अधिक ठडक होगी। हमारी आन्तरिक गर्मी भी कम हो गयी है इसलिए हमारी हवा पतली होती जाती है। हवा पानी बनती जा रही है और पानी बर्फ। धीरे-धीरे बर्फ की जगह सूखी चट्टाने होगी। अभी इसको बहुत दिन है पर हम उस दिन की प्रतीक्षा नही करना चाहते। इस ग्रह को ही छोड़ देगे। हमारे आकाशयान इधर-उधर टोह लगा रहे है, जहाँ कोई अच्छा-सा स्थान देख पड़ा, हम चले जायँगे। लम्बी यात्रा करनी है और उस यात्रा के बाद नयी सस्कृति और सभ्यता की नीव डालनी है। हमारे कधो पर बहुत बडा दायित्व है। इस काम को बहुत बड़ी संख्या मे नही किया जा सकता। इसी लिए हमने अपनी जनसख्या पर रोक लगायी है।

इस साहस, अदम्य उत्साह और दूरदर्शिता की भूरि-भूरि प्रशसा करने के सिवाय और क्या कहा जा सकता था। उनकी सफलता की मगलकामना प्रकट करके इन लोगो ने विदा ली। पता नही फिर कभी दोनो जातियों में भेंट होगी या नही। यह भी पता नही कि ऐसी विपत्ति का सामना मनुष्य भी इसी प्रकार कर सकेगे या नही।

———

यात्रा समाप्त

सं० २०९२, सन् २०३५। कार्तिक की अमावस्या। सात वर्ष बाद आज मरुत्वान् लौट रहा है।

उसके आने की सूचना पहिले ही मिल चुकी थी। उस समय तक कई आकाशयान बन चुके थे। इनके एक अन्ताराष्ट्रीय दस्ते ने सौरमडल के बाहर जाकर मरुत्वान् का स्वागत किया और उसको बीच मे करके अर्द्धचन्द्राकार वृत्त बनाए उतर रहा था। सारी पृथिवी पर हर्ष मनाया जा रहा था, भारत का तो कहना ही क्या। वाराणसी खुशी के मारे आपे से बाहर हो रही थी। सारनाथ के उस मैदान मे जनसमुद्र उमड पडा था। मरुत्वान् के उतरने पर राष्ट्र की ओर मे तोप की सलामी दी गई, लोगो ने पटाखे छोड़े। जयध्वनि से गगन गूंज उठा। सभी राष्ट्रों और विद्वत्परिषदों के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

कुछ देर के बाद घरवालों और अन्तरंग मित्रों की बारी आयी। चारो ही क्वाँरे थे, माताओं ने माथे में तिलक लगाया, ब्राह्मणो ने देव-निर्माल्य मालाएँ प्रदान कीं। इस देश की परिपाटी है कि जब किसी से बहुत दिनों पर भेंट होती है तो उससे कहा जाता है आप कुछ दुबले हो गए हैं, स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था क्या? पर इनसे ऐसा कहने का किसी को साहस न हुआ। बून्द-बून्द से स्वास्थ्य टपक रहा था, पहिले से युवा होकर लौटे थे।

उस दिन दीपावली थी। यों तो यह हिन्दुओं का त्यौहार है पर इस वर्ष की दीपावली सारी पृथिवी पर मनायी गयी।

इनके साथ खोज की विशाल सामग्री आयी थी। पशु-पक्षियो के कंकाल, कई प्रकार की खाले, रसो में सुरक्षित फल-फूल, भौतिक दृग्विषयो और जीव-जन्तुओ के फोटो, मानचित्र, शस्त्र, बर्तन, कारीगरी के नमूने, पुस्तके। इनमे से एक-एक का अध्ययन करने के लिए कई वर्ष चाहिएँ। इन लोगो के तो अगले कई मास प्रवचन मे ही लगनेवाले थे। इनके साथ जो वस्तुएँ आयी थी, उनमे स्यात् सबसे अद्भुत कुत्ते के बच्चों का जोड़ा था। यह दूर की दुनिया की जीवित निशानी थी।
